वक्तृत्वकला के बीज

भाग ६

समन्वय-प्रकाशन

सम्पादन-सहयोग
स्व० श्री लालचदजी बैद (भादरा)

प्रबन्ध-सम्पादक
मोतीलाल पारख

प्रकाशक .
बेगराज भंवरलाल चौरडिया—चैरिटेबल ट्रस्ट
५, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता १

संस्करण :
वि० स० २०30 चैत्र सुदि १
महावीर जयती
अप्रेल १९७३
२१०० प्रतिया

Rs 7 - 00

मूल्य :
चार रुपया पचास पैसे

मुद्रक
संजय साहित्य सगम, आगरा-२ के लिए—
रामनारायन मेडतवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
[illegible] की गली, आगरा-२ ।

प्राप्तिकेन्द्र :

- श्री वेगराज भँवरलाल चोरड़िया—
  चैरिटेबल ट्रस्ट,
  ५, सीनागोग स्ट्रीट
  कलकत्ता-१

●

- श्री मोतीलाल पारख
  C/o दि अहमदाबाद लक्ष्मी काटन मिल्स, कं० लि०
  पो० बा० नं० ४२
  अहमदाबाद—२२

●

- श्री सम्पतराय बोरड़
  C/o मदनचंद सपतराय बोरड़
  ४०, धानमंडी,
  श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्राक्कथन

मानव-जीवन मे वाचा की उपलब्धि एक बहुत बडी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यो की दृष्टि मे वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, वाचा सरस्वती भिषग्[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वय सरस्वती-रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचाररूप रोगो को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावो को एक दूसरे तक पहुंचाने का एक बहुत बडा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओ की तरह भीतर-ही-भीतर घुटकर समाप्त नही हो जाता? मनुष्य जो गूँगा होता है, वह अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है, फिर भी अपना सही आशय कहा समझा पाता है दूसरो को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुत एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नही है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय मे ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हे जीवन भर नही भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्‌महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे, जिनकी वाणी का

---

१ यजुर्वेद १९।१२

नाद आज भी हजारो-लाखो लोगो के हृदयो को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओ मे भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न वुझी है और न वुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नही वन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एव अनुभव का आयाम वहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन चिंतन एव अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एव चिरस्थाई वनाता है। विना अध्ययन और विपय की व्यापक जानकारी के भापण केवल भपण (भोकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे, यदि प्रस्तावित विपय पर उसका सक्षम अधिकार नही है, तो वह सभा मे हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसलिए वहुत प्राचीनयुग मे एक ऋपि ने कहा था—वक्ता शतसहस्रेषु', अर्थात् लाखो मे कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनिश्री धनराजजी जैनजगत् के यशस्वी प्रवक्ता है। उनका प्रवचन, वस्तुत प्रवचन होता है। श्रोताओ को अपने प्रस्तावित विपय पर केन्द्रित एव मन्त्रमुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक वहुत वडे व्यापक एव गभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका सस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भापाओ का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी। मालूम होता है, उन्होने पाडित्य को केवल छुआ भर नही है, किन्तु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक 'वक्तृत्वकला के वीज' मे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति मे जैन आगम, वौद्धवाङ्मय, वेदो से लेकर उपनिपद् व्राह्मण पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएं, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएं—इस प्रकार शृखला-वद्धरूप मे सकलित हैं कि किसी भी विपय पर हम वहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते है। सचमुच वक्तृत्वकला के अगणित वीज इसमे सन्निहित हैं। सूक्तियो का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अग्रेजी

साहित्य व अन्य धर्मग्रथो के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नही है, उनमे विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनिश्री जो वाड्मय के रूप मे विराट् पुरुष हो गए हैं। जहाँ पर भी दृष्टि पडती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है, जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसगत अपने भाषण मे उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओ के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' मे मुनिश्री का अपना क्या है ? यह एक सग्रह है और सग्रह केवल पुरानी निधि होती है, परन्तु मैं कहूगा—कि फूलो की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एव विभिन्न रगो के मोहक पुष्पो की माला बनाता है तो उसमे उसका अपना क्या है ? बिखरे फूल, फूल हैं, माला नही। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रग-विरगे फूलो का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप मे सयोजन करना – यही तो मालाकार का काम है, जो स्वय मे एक विलक्षण एव विशिष्ट कलाकर्म है। मुनिश्री जी वक्तृत्वकला के बीज मे ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयो का उपयुक्त चयन एव तत्सम्बन्धित सूक्तियो आदि का सकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का सकलन अन्यत्र इस रूप मे नही देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनिजी की सस्कृत-प्राकृत रचनाओ ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशसक रहा हू। श्री धनमुनि जी उनके बडे भाई हैं—जब यह मुझे ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओ का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब कैसे कहू कि इन दोनो मे कौन बडा है और कौन छोटा ? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एव इनकी सग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनिश्री जी, और उनकी इस महत्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हू। विभिन्न भागो मे प्रकाशित होनेवाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार लेखक एव स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के लिए ऋणी रहेगे। वे जब भी चाहेगे, वक्तृत्वकला के वीज मे मे उन्हे कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नही रहेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनिश्रीजी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि



मंगल-संदेश

मनुष्य विभिन्न शक्तियों का स्रोत है। नहीं, वह अनन्तशक्तियों का स्रोत है।

पर, जिन-जिन शक्तियों को अभिव्यक्त होने का समय और साधन मिल पाता है वही हमारे सामने विकसित रूप से प्रगट होती है, शेष अनभिव्यक्त रूप मे अपना काम करती रहती हैं।

संग्राहक शक्ति भी उन्हीं मे से एक है, जो अन्वेषण-प्रधान है और दूसरो के लिए बहुत उपयोगी बन जाती है।

मक्खन का आस्वादन करना एक बात है, पर उसे दही मे से मथकर निकालकर संग्रहीत करना एक विशिष्ट शक्ति है।

मुनि श्री धनराजजी (सिरसा) में यह शक्ति अच्छी विकसित हुई है। शुरू से ही उनको यह धुन रही है, आदत रही है, वे बराबर किसी न किसी रूप मे खोज करते रहते हैं और फिर उसको संग्रहीत कर एक आकार दे देते हैं। वह साहित्य बन जाता है, जन-जन की खुराक बन जाता है।

"वक्तृत्वकला के बीज" एक ऐसी ही कृति हमारे समक्ष प्रस्तुत है जो मुनि धनराजजी की संग्राहकशक्ति का एक विशिष्ट उदाहरण है। उसमें प्राचीन, अर्वाचीन अनेक ग्रन्थों का मन्थन है, अनेक भाषाओं का प्रयोग है। मूल उद्धरण के साथ हिन्दी अनुवाद देकर और सरसता उसमे लाई गई है। बड़ा सुन्दर प्रयास है। अपनी वक्तृत्वकला का विकास चाहनेवाले वक्ता के लिए बहुत उपयोगी है यह ग्रन्थ, जो अनेक भागों मे विभक्त है। मेरा विश्वास है—यह प्रयत्न बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय सिद्ध होगा।

चूरू
११ सितम्बर १९७२

—आचार्य तुलसी

प्रकाशकीय

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बडी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एव परिस्थितियो का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणो की साधना एव विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुत हजारो लाखो मे कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी मे वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओ के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओ के मध्य लाखो नर-नारियो ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उनके मधुर प्रभाव को जीवन मे अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनिश्री धनराजजी भी वास्तव मे वक्तृत्वकला के महान गुणो के धनी एक कुशल प्रवक्ता सत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापथ शासन मे सर्वप्रथम अवधानकार भी हैं, इन सबके साथ-साथ वहुत वडे विद्वान् तो हैं ही। उनके प्रवचन जहा भी होते हैं, श्रोताओ की अपार भीड उमड आती है। आपके विहार करने के वाद भी श्रोता आपको याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करे और उसका सदुपयोग करें, अत जनसमाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियो का यह विशाल सग्रह प्रस्तुत किया है।

वहुत समय से जनता की विद्वानो की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियो की माग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जनहिताय प्रकाशन किया जाय तो वहुत लोगो को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारना प्रारभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने मे श्री डूगरगढ, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, उकलाना, कैथल, हासी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियो एव युवको ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियो मे यह सामग्री सकलित हुई है। हम इस विशाल सग्रह को विभिन्न भागो मे प्रकाशित करने का सकल्प लेकर पाठको के समक्ष प्रस्तुत हुए है।

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर ने पुस्तक के लिए अपना मंगल-सदेश देकर इस प्रयत्न को प्रोत्साहित किया—उनके प्रति मैं हृदय की असीम श्रद्धा व्यक्त करता हू। तथा पुस्तक की महत्ता और उपयोगिता के अनुसार ही इसकी भूमिका लिखी है जैनसमाज के वहुश्रुत विद्वान् तटस्थ विचारक उपाध्याय श्री अमर-मुनि जी ने। उनके इस अनुग्रह का मैं हृदय से आभारी हू।

इसके प्रकाशन का समस्त भार श्री वेगराज भवरलाल जी चोरडिया, चैरिटेवल ट्रस्ट, कलकत्ता ने वहन किया है, इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके अत्यत आभारी हैं। इसके प्रकाशन एव प्रूफ सशोधन-मुद्रण आदि की समस्त व्यवस्था 'सजय-साहित्य-सगम' के सचालक श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने की है, तथा अन्य सहयोगियो का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओ और लेखको के लिए एक संदर्भग्रथ (विव्लोग्राफी) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा।...

●●

आत्म निवेदन

'मनुष्य की प्रकृति का वदलना अत्यन्त कठिन हैं'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक सावित हुई। वचपन मे जव मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्वर तेरापथी-विद्यालय मे पढता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्राय प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति मे सग्रह करने की भावना अधिक थी, अत मैं खर्च करके भी उसमे मे कुछ न कुछ वचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिव्वी मे रखा करता था।

विक्रम सवत् १९७९ मे अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी मैं, छोटी वहन दीपाजी और छोटे भाई चन्दन-मल जी) परमकृपालु श्रीकालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयो-पैसो का सग्रह छोड दिया, फिर भी सग्रहवृत्ति नही छूट सकी। वह धनसग्रह से हटकर ज्ञानसग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणो मे हम अनेक वालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोप आदि पढ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की वन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढने मे अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हे लिख लेता या ससार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा सग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भापा मे कह दिया करते थे कि "धन्नू तो न्यारा मे जाने की [अलग विहार करने की] तैयारी कर रहा है।" उत्तर मे मैं कहा करता—क्या आप गारटी दे मकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही

रखेंगे ? क्या पता, कल ही अलग विहार करने का फरमान करदें ! व्याख्यानादि का सग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने मे सहायता मिलेगी।

समय-समय पर उपरोक्त साथी मुनियो का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० स० १९८६ मे श्री कालुगणी ने अचानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थेलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया। हम दोनो भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे। व्याख्यान आदि का किया हुआ सग्रह उस चातुर्मास मे बहुत काम आया एव भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसग्रह करने की भावना बलवती बनी। हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे। उनके दिवगत होने के पश्चात् दोनो भाई अग्रगण्य के रूप मे पृथक्-पृथक् विहार करने लगे।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढी। उसमे वक्ता बनने के विषय मे खासी अच्छी बातें बताई हुई थी। पढते-पढते यह पक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढो, उसमे जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो।" इस पक्ति ने मेरी सग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया। मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरन्त लिख लेता। फिर जो उनमे विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप मे गूथ लेता। इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओ मे निबद्ध स्वरचित सैकडो भजन और सैकडो व्याख्यान इकट्ठे हो गए। फिर जैन-कथा साहित्य एव तात्त्विकसाहित्य की ओर रुचि बढी। फलस्वरूप दोनो ही विषयो पर अनेक पुस्तको की रचना हुई। उनमे छोटी-बडी लगभग २० पुस्तके तो प्रकाश मे आ चुकीं, शेष २०-२२ अप्रकाशित ही हैं।

एक बार सगृहीत-सामग्री के विषय मे यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन सग्रह को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए। मैंने इस सुझाव को स्वीकार किया और अपने प्राचीन-सग्रह को व्यवस्थित करने मे जुट गया। लेकिन पुराने सग्रह मे कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के है अथवा किस कवि,

वक्ता या लेखक के हैं—यह प्राय लिखा हुआ नही था। अत ग्रन्थो या शास्त्रो आदि की साक्षिया प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षो मे वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, सगीत शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अग्रेजी, सस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, मराठी एव पजाबी सूक्तिसग्रहो का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया सग्रह बना और प्राचीन सग्रह को साक्षी सम्पन्न बनाने मे सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तिया एव श्लोक आदि बिना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षिया नही मिल सकी। जिन-जिन की साक्षिया मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई है। जिनकी साक्षिया उपलब्ध नही हो सकी, उनके आगे स्थान रिक्त छोड दिया गया है। कई जगह प्राचीन-सग्रह के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकिरामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थो के नाममात्र लगाए हैं, अस्तु!

इस ग्रन्थ के सकलन मे किसी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नही है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है? यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियो के मतो का सकलन होने से ग्रन्थ मे भाषा की एकरूपता नही रह सकी है। कही प्राकृत-सस्कृत, पारसी, उर्दू एव अग्रेजी भाषा है तो कही हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पजाबी और बगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओ के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा मे कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ मे भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थो, कवियो, लेखको एव विचारको ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा मे व्यक्त किए है तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा मे ही बोले है। मुझे जिस रूप मे जिसके जो विचार मिले है, उन्हे मैंने उसी रूप मे अकित किया है लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तो के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ मे उच्चस्तरीय विद्वानो के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमो के गम्भीर पद्य हैं, वेदो, उपनिषदो के अद्‌भुत मत्र हैं,

स्मृति एव नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं, वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तिया, लोकोक्तिया, हेतु, दृष्टान्त एव छोटी-छोटी कहानियां भी हैं। अत. यह ग्रन्थ नि सदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एव हृदयग्राही बना सकेंगे एव अद्‌भुत विचारो का विचित्र चित्रण करके उनमे निखार ला सकेंगे, अस्तु।

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के वीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहा केवल वीज इकट्ठे किए गए हैं। वीजो का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहा करना—यह वप्ता [वीज बोनेवालो] की भावना एव बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वप्ता परमात्मपदप्राप्तिरूप फलो के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रो मे इन वीजो का वपन करेंगे। अस्तु।

यहा मैं इस वात को भी कहे विना नही रह सकता कि जिन ग्रन्थो, लेखो, समाचार पत्रो एव व्यक्तियो से इस ग्रन्थ के सकलन मे सहयोग मिला है—वे सभी सहायकरूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह ग्रन्थ कई भागो मे विभक्त है एव उनमे सैकडो विषयो का सकलन है। उक्त सग्रह वालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्यश्री तुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एव फरमाया कि इसमे छोटी-छोटी कहानियां एव घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए। आचार्यश्री का आदेश स्वीकार करके इसे सक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओ मे सम्पन्न किया गया।

मुनि श्री चन्दनमलजी, डूगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एव साध्वियो ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। वीदासर महोत्सव पर कई सतो का यह अनुरोध रहा कि इस सग्रह को अवश्य छपा दिया जाए!

सर्व प्रथम वि० स० २०२३ मे श्री डूंगरगढ के श्रावको ने इसे धारना शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एव पजाव के अनेक ग्रामो-नगरो के उत्साही युवको के तीन वर्षो के अथकपरिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढ विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एव मनन से अपने बुद्धि वैभव को क्रमश बढाते जायेंगे—

वि० स० २०२७, मृगसर वदी ४
मङ्गलवार, रामामडी, (पजाव) —धनमुनि 'प्रथम'



अनुक्रमणिका

पहला कोष्ठक पृष्ठ १ से ९३ तक

१ सज्जन (सत्पुरुष), २ सज्जनो का स्वभाव, ३ सज्जनो के स्वभाव की निश्चलता, ४ सत्संगति, ५ सत्संगति का प्रभाव, ६ दुर्जन (दुष्ट), ७ दुर्जनो का स्वभाव, ८ दुर्जनसग-परित्याग, ९ कुसंगति का असर, १० कुसंगति से हानि, ११ दुष्टो का सुधार कठिन, १२ दुर्जनो के साथ व्यवहार, १३ धूर्त-दगाबाज, १४ ढोग और ढोगी, १५ सज्जन-दुर्जन का अन्तर, १६ भलाई-सज्जनता, १७ बुराई-दुर्जनता, १८ भलाई बुराई की अमरता, १९ संगति के अनुसार गुण-दोष, २० महान्पुरुष-महात्मा, २१ महापुरुषो का पराक्रम, २२ महान् पुरुषो के विषय मे विविध, २३ महापुरुषो का सम्पर्क, २४ बडा आदमी और बडप्पन, २५ उत्तमपुरुष, २६ उत्तमपुरुषो का स्वभाव, २७ अधम (नीच) पुरुष, २८ शारीरिक दोष पर आधारित अधमता, २९ वीर-पुरुष, ३० धैर्य, ३१ उतावल, ३२ तेजस्वीपुरुष, ३३ समर्थपुरुष, ३४ शूरवीर पुरुष, ३५ कायर, ३६ शूरता और कायरता, ३७ बलवान व्यक्ति ३८ अद्‌भुत बलिष्ठ व्यक्ति, ३९ निर्बल, ४० बल-पराक्रम, ४१ कुलीन पुरुष ।

दूसरा कोष्ठक . पृष्ठ ९४ से १७४ तक

१ गुण, २ गुणो का महत्त्व, ३ विभिन्न प्रकार के गुण, ४ गुणो का नाश एव प्रकाश, ५ गुणज्ञ, ६ गुणी, ७ गुणग्राहक बनो ! ८ गुणग्राही के अभाव मे, ९ गुणहीन, १० गुणहीन नाम. ११ दोष, १२ स्वदोष, १३ पर-दोष, १४ गुणो मे दोष १५ दृष्टि-दोष एव उसके आश्चर्य, १६ उपकार (अहसान), १७ परोप-कार, १८ प्रत्युपकार (उपकार का बदला), १९ कृतज्ञता और कृतज्ञ, २० परोपकारी, २१ निष्पकारी, २२ कृतघ्न, २३ उदार और उदारता, २४ दाता,

२५ दाता के उदाहरण, १६ दान, २७ दान की महिमा, २८ दान की प्रेरणा, २९ दान मे विवेक, ३० दान के भेद, ३१ अभयदान, ३२ सुपात्रदान, ३३ कुपात्रदान, ३४ पात्र-कुपात्र, ३५ ज्ञानदान, ३६ कृपण, ३७ याचक, ३८ याचना ।

तीसरा कोष्ठक पृष्ठ १७५ से २३४

१ धन, २ धन की भूख, ३ धन का प्रभाव, ४ धन का उत्पादन, ५ धन का उपयोग, ६ धन का खजाना अमेरिका मे, ७ धन के विविधरूप, ८ धन की निंदनीयता, ९ अन्याय का धन, १० न्यायार्जित धन, ११ वास्तविक धन, १२ लक्ष्मी, १३ लक्ष्मी का मूल आदि, १४ लक्ष्मी की नश्वरता एव अस्थिरता, १५ लक्ष्मी का निवास, १६ लक्ष्मी के अप्रिय स्थान, १७ लक्ष्मी के विकार, १८ धनवान, १९ दुनिया के बडे धनी, २० धनिको की स्थिति, २१ निर्धन और निर्धनता, २२ गरीव और गरीवी, २३ गरीवी के चित्र, २४ दरिद्र, २५ दरिद्रता, २६ आय, २७ व्यय, २८ अपव्यय निपेध, २९ ऋण (कर्ज), ३० उधार, ३१ सग्रह, ३२ व्याज ।

चौथा कोष्ठक पृष्ठ २३५ से ३१६ तक

१ आत्मा, २ आत्मा का स्वरूप, ३ आत्मा की शाश्वतता आदि, ४ आत्मा का कर्तृत्व, ५ आत्मा का दर्शन, ६ आत्मा का ज्ञान, ७ आत्मज्ञ, ८ आत्मरक्षा, ९ आत्मकरक्षक, १० आत्मसम्मान, ११ आत्मविश्वास, १२ आत्मप्राप्ति, १३ आत्मशुद्धि, १४ आत्मदमन, १५ आत्मविजय, १६ आत्मचिन्तन, १७ आत्मा की महिमा, १८ आत्मा के भेद, १९ इन्द्रिय, २० इन्द्रियो की शक्ति, २१ इन्द्रियदमन, २२ जितेन्द्रिय, २३ कान और वधिरता, २४ आंख, २५ अन्धा, २६ जिह्वा, २७ मन, २८ मन का स्वभाव, २९ मन के आश्रित वन्ध-मोक्षादि, ३० मन की मुख्यता, ३१ मन के विना कुछ नही, ३२ मन शुद्धि, ३३ मन-शुद्धि दुष्कर, ३४ मन शुद्धि के अभाव मे, ३५ मन की शिक्षा, ३६ मनोनिग्रह, ३७ मनोनिग्रह के मार्ग, ३८ मनोनिग्रह मे लाभ, ३९ मन का तार, ४० विलपावर-दृढसकल्प, ४१ मन की उपमाएँ, ४२ मन के विषय मे विविध ।

चारो कोष्ठको मे कुल १५३ विषय तथा दस भागो मे लगभग १५०० विषय एव उपविषय हैं ।

गरीवी के चित्र	२१७
गुण	६४
गुणग्राहक वनो !	१०६
गुणग्राही के अभाव मे	१११
गुणहीन	११२
गुणशून्य नाम	११४
गुणज्ञ	१०३
गुणी	१०४
गुणो का नाश एवं प्रकाश	१०२
गुणो का महत्व	९६
गुणो मे दोप	१२३
जितेन्द्रिय	२७८
जिह्वा	२८५
ढोग और ढोगी	३३
तेजस्वी पुरुप	७५
दरिद्र	२१९
दरिद्रता	२२१
दाता	१३९
दाता के उदाहरण	१४२
दान	१४३
दान की प्रेरणा	१४६
दान की महिमा	१४४
दान के भेद	१५२
दान मे विवेक	१४९
दृष्टिदोप एव उसके आश्चर्य	१२४
दुर्जन (दुष्ट)	१५
दुर्जनो का स्वभाव	१८
दुर्जनो के साथ व्यवहार	२९
दुर्जन सग परित्याग	२२
दुनियाँ के वडे धनी	२१०
दुष्टो का सुधार कठिन	२७
दोष	११६
धन	१७५
धन का खजाना (अमेरिका मे)	१८३
धन का उत्पादन	१८०
धन का उपयोग	१८१
धन की निन्दनीयता	१९१
धन का प्रभाव	१७८
धन की भूख	१७६
धनवान	२०८
धन के विविधरूप	१८४
धनिको की स्थिति	२१२
धीरपुरुष	६८
धूर्त-दगावाज	३१
धैर्य	७०
न्यायार्जित धन	१९५
निर्धन और निर्धनता	२१३
निर्वल	८८
निरुपकारी	१३५
प्रत्युपकार-उपकार का वदला	१३०
परदोप	१२१

परोपकार १२८
परोपकारी १३३
पात्र-कुपात्र १६०
व्याज १३४
वडा आदमी और वड़प्पन ६०
वलवान व्यक्ति ८४
वल-पराक्रम ६०
वुराई-दुर्जनता ४१
भलाई (सज्जनता) २८
भलाई और वुराई की अमरता ४४
मन २८७
मनका तार ३१०
मनका स्वभाव २९१
मनके आश्रित वन्ध-मोक्षादि २९६
मन के विना कुछ नही २९७
मन के विपय मे विविध ३१६
मन की उपमाएँ ३१३
मन की मुख्यता २९४
मन की शिक्षा ३०३
मनोनिग्रह ३०४
मनोनिग्रह के मार्ग ३०६
मनोनिग्रह से लाभ ३०८
मन शुद्धि २९९
मन शुद्धि के अभाव मे ३०२
मन शुद्धि दुष्कार ३०१
महापुरुपो का पराक्रम ५३
महापुरुपो का सम्पर्क ५८
महान्‌पुरुपोंके विपयमे विविध ५५
महान्‌पुरुप-महात्मा ४९
याचक १६८
याचना १७१
ऋण (कर्ज) २२८
लक्ष्मी १९७
लक्ष्मी का निवास २०२
लक्ष्मी का मूल आदि १९८
लक्ष्मी की नश्वरता एव अस्थिरता २००
लक्ष्मी के अप्रियस्थान २०३
लक्ष्मी के विकार २०५
व्यय २२५
वास्तविक धन १९६
विभिन्न प्रकार के गुण ९८
विलपावर-दृढसकल्प ३१२
शारीरिकदोप पर आधारित अधमता ६७
शूरता और कायरता ८३
शूरवीर पुरुप ७८
स्वदोप ११९
सज्जन (सत्पुरुप) १
सज्जन-दुर्जन का अन्तर ३४
सज्जनो का स्वभाव ५
सत्सगति १०
सज्जनोंके स्वभावकी निश्चलता ८
सत्सगति का प्रभाव ११
समर्थपुरुप ७७
सग्रह २३२
सगति के अनुसार गुण-दोप ४५
सुपात्रदान १५६
ज्ञानदान १६१

भाग छठा

वक्तृत्वकला के बीज

पहला कोष्ठक

१ सज्जन (सत्पुरुष)

१. उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः, स साधुः सद्भिरिष्यते ॥

—पंचतन्त्र १।१९६

उपकारी के साथ उपकार करने में सज्जनता की कोई विशेषता नही है, किन्तु अपकार करनेवालो पर भी जो उपकार करता है, सत्पुरुप उसे ही सज्जन मानते हैं।

२. व्यवहारो की शुद्धि और दूसरों के प्रति आदरभाव, सज्जन मनुष्य के ये ही दो लक्षण हैं।

—डिजराइली

३. सज्जनश्च गुणग्राही।

—सुभाषित-संचय

सत्पुरुप गुणग्राही होते हैं।

४. स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेक सतामग्रणीः।

जो परहित को ही अपना हित समझता है, वही सत्पुरुषो में अग्रगण्य है।

५. प्रियंवदः स्यादकृपणः, शूरः स्यादविकत्थनः।
दाता नाऽपात्रवर्षी च, प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः ॥

सत्पुरुष प्रियवादी होते हुए भी उदार होते हैं, शूर होने पर भी अपनी प्रशंसा नहीं करते, दाता होने पर भी कुपात्रों को नहीं देते और साहसी होने पर भी निष्ठुर नहीं होते।

६. सज्जन ऐसा होत है, जैसे सूप सुहाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देत उडाय॥

—कबीर

७. सिंह-सगम सज्जन-वयण, कदली फले एक वार।
तिरिया-तेल हमीर-हठ, चढै न दूजी वार॥

८. आदानं ही विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव।

—रघुवंश

बादलों के समान सज्जन-पुरुष भी दान करने के लिए ही किसी वस्तु को ग्रहण करते हैं।

९. कण्ठे सुधावसति वै खलु सज्जनानाम्।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

सत्पुरुषों के गले में अमृत निवास करता है।

१०. लोभं प्रयाता अपि नैव सन्तो, दुष्टामशिष्टां गिरमुद्गिरन्ति।

—रश्मिमाला १८।१३

क्षुब्ध होने पर भी सज्जन दुष्ट एवं अशिष्ट वाणी का व्यवहार नहीं करते।

११. परोपकाराय सतां विभूतय।

—उद्भटसागर

सत्पुरुषों की विभूतियां परोपकार के लिए ही होती हैं।

१२. पारस में अरु सुजन में, बड़ो आंतरो जाण।
वो लोहा कंचन करे, वो करे आप समान॥

१३. अरे विनोले बावरे! मन के बडे अधीर।
आप उघाडो रहत है, पर का ढकैं शरीर॥

१४ मुख मीठा सज्जन घणा, मिजलस मित्र अनेक।
काम पड्या कायम रहे, सो लाखन मे एक॥

१५ काछ-दृढा कर बरसणा, मन चगा मुख-मीठ।
रण-शूरा जग-वल्लभा, सो मैं विरला दीठ॥

१६ शूरा॰ सन्ति सहस्रश प्रतिपद विद्याविदोऽनेकश॰।
सन्ति श्रीपतयो निरस्तधनदास्तेपि क्षितौ भूरिश॥
किन्त्वाकर्ण्य निरीक्ष्य वान्यमनुज दु खार्दित यन्मन-
स्ताद्रूप्य प्रतिपद्यते जगति ते सत्पुरुपा॰ पञ्चपा॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार; पृष्ठ ५५

कदम-कदम पर हजारो शूर-वीर हैं, अनेक विद्वान् है, धनद को पराजित करनेवाले लक्ष्मीपति भी बहुत है, किन्तु दु खी मनुष्य को सुनकर या देखकर जिनका मन दु ख मे पीडित हो जाता है—ऐसे सत्पुरुष विश्व मे पाच-छ ही हैं अर्थात् विरले है।

१७ न सन्त्येव ते येपा सतामपि सता न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रव॰

—हर्षचरित

ससार मे ऐसे लोग हैं ही नही, जिनके स्वय सज्जन होने पर भी मित्र, उदासीन और शत्रु न हो।

१८ जाके सौ सज्जन नही, दुर्जन नही पच्चास।
तसु जननी सुत जनम के, भार मरी दस मास॥

१९. सज्जनो के शीश पर, संकट रहेगे कितने दिन!
चाँद को घेरे हुए, बादल रहेगे कितने दिन!

२०. सज्जन व्यक्ति को समझने के लिए भी एक और सज्जन चाहिए।

—बर्नार्डशा

२१. मेरा तो यह भी विश्वास है कि सत्पुरुषों के कार्य का सच्चा आरम्भ उनके देहान्त के बाद होता है।

—गांधी

२२. साजन साकड़ा ही भला।

● साजन जिसा भोजन।

● मीठी रोटी तोडे जठी नें ही मीठी।

—राजस्थानी कहावतें



२ सज्जनों का स्वभाव

१ उपकर्तुं प्रियं वक्तुं, कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं, केनेन्दुशिशिरीकृतः ?

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

उपकार करना, प्रिय बोलना और स्वाभाविक स्नेह करना—सज्जनों का चन्द्रमा के समान यह शीतल स्वभाव किसने बनाया ?

२. असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ? २८ ॥
प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसाराः परकथा,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ? ६४ ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक

असत्पुरुषों से नहीं मांगना, धनहीन मित्र का (दिया हुआ) नहीं लेना, न्याय से आजीविका चलाना, प्राणान्त में भी नीचकर्म नहीं करना, विपत्ति में अधीर न होना और महान् पुरुषों के पीछे चलना—यह खड्गधारावत् कठोर व्रत करना सज्जनों को किसने सिखाया ? २८ ॥

गुप्तदान करना, घर आये व्यक्ति का सत्कार करना, भलाई करके मौन रहना, दूसरे के किए हुए उपकार को सभा में कहना, धन का अभिमान नहीं करना और पराई चर्चा में उसके निरादर की बात बचाकर कहना

—यह खड्गधारावत् कठोर व्रत सत्पुरुषो को किसने सिखाया ? (सिखाने वाला कोई नही, उनका स्वभाव ही ऐसा है।) ६४ ॥

३. वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को नु विज्ञातुमर्हति ?
—उत्तर रामचरित २।७

श्रेष्ठ पुरुषो के वज्र से भी कठोर और फूलो से भी कोमल चित्तो को कौन जान सकता है ?

४. अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि, वासयन्ति करद्वयम्।
अहो ! सुमनसां वृत्ति-र्वामदक्षिणयोः समा।
—प्रसग-रत्नावली

अञ्जलि-बोबे मे रहे हुए फूल दोनो हाथो को सुवासित करते हैं। सद्हृदय-वालो की वृत्ति समान हुआ करती है, उसमे वाम-दक्षिण का भेद नही रहता।

५. कुसुमस्तवकस्येव, द्वे गती स्तो मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य, विशीर्येत वनेऽथवा ॥
—भर्तृहरि-नीतिशतक-३३

फूलो के गुच्छे के समान मनस्वी पुरुषो की दो तरह की गति होती है। वे या तो सब के सिर पर रहे या वन मे ही कुम्हला जाएँ।

६. के हंसा मोती चुगे, के निरणा रह जाय।

७. तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेद सिन्धावगाधता।
अलङ्घनीयता हेतु-रुभयं तन् मनस्विनि ॥
—शिशुपालवध

पर्वत मे ऊँचाई है, गहराई नही है और समुद्र मे गहराई है, ऊँचाई नही है, किन्तु अलंघनीय होने के ये दोनो ही कारण मनस्वि-पुरुष मे विद्यमान रहते है अर्थात् वह पर्वत के समान ऊँचा और समुद्र के समान गहरा होता है।

८. अम्बरमनूरुलङ्घ्यं, वसुन्धरा सापि वामनैकपदा।
अब्धिरपि पोतलङ्घ्य:, सतां मन: केन तुल्यं स्यात् ?

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-५०

आकाश चरणरहित सूर्य के सारथी द्वारा लांघा जाता है, पृथ्वी वामन अवतार के एक पग मे समा जाती है और समुद्र जहाज से पार किया जा सकता है, किन्तु सन्तो के विशाल मन की किससे तुलना की जाय ?



३ सज्जनों के स्वभाव की निश्चलता

१. स्वभावं नैव मुञ्चन्ति, सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।

दुष्टो का संसर्ग होने पर भी सज्जन अपना स्वभाव नही छोडते ।

२. न त्यजति रुतं मञ्जु, काकसंसर्गतः पिक ।

—कुसुमदेव

कौवे के साथ रहने पर भी कोयल अपने मधुर वाणीविलास को नहीं छोडती ।

३. मूले भुजङ्गा॰ शिखरे विहङ्गा, शाखासु कीशाः कुसुमेषु भृङ्गा ।
तिष्ठन् सदैव किल दुष्टमध्ये, न चन्दनो मुञ्चति चारुगन्धम् ॥

—हितोपदेश २।१६१

मूल मे साप हैं, शिखर पर पक्षी हैं, शाखाओ पर वानर हैं और फूलो पर भंवरे हैं। इन सब दुष्टो के बीच मे रहता हुआ भी चन्दन अपनी सुगन्धि को नही छोडता ।

४. युगान्ते प्रचलेन्मेरु॰, कल्पान्ते सप्त सागरा॰ ।
साधव॰ प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ॥

—चाणक्यनीति १३।२०

युगान्त मे मेरु एव कल्पान्त मे सातो समुद्र चल जाते हैं, किन्तु सत्पुरुष स्वीकार किए हुए अपने सिद्धान्त से नही चलते ।

५. कान द्यावा पण कानू न द्यावा ।

—मराठी कहावत

सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी सज्जन अपना मार्ग नही छोड्ते ।

६. शिरश्छेदेपि वीरस्तु, धीरत्व नैव मुञ्चति ।

वीर पुरुष शिर कट जाने पर भी धैर्य को नही छोडता ।

७. सिहनी मर जाती है, पर घास को खाती नही ।
आग मे जल जाय सोना, पर चमक जाती नही ॥

८. तुलसी उत्तम प्रकृति को, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापै नही, लिपटे रहत भुजग ॥

९. लोह-कञ्चन री लाट, रात-दिवस भेली रहै ।
कदे न लागै काट, सोना ऊपर सगतिया ।

—सोरठा संग्रह

१० कोकिलानां खल्वपत्यं, काकया पुष्टोऽपि कोकिल ।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र ३।३

कोयल का बच्चा कौवी द्वारा पोषे जाने पर भी कोयल ही रहता है ।

११. घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलै-
र्जल नहि व्रजति विकारमम्बुधे ।

— शिशुपालवध

मेघ के जल मे भरी हुई नदियो के पानी मे समुद्र कभी विकृत नही होता ।

१२. आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दन किं विषायते ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

जहरीले सर्पो के घेर लेने पर भी चन्दन जहरीला नही होता ।



सत्संगति

१. सता सद्भि सग कथमपि हि पुण्येन भवति ।

—उत्तर रामचरित २।२

सज्जनो को भी मज्जनो का संग किसी विशेष पुण्य के उदय से ही मिलता है ।

२. सत्सगश्च विवेकश्च, निर्मल नयनद्वयम् ।

—गरुड़पुराण

सत्संग और विवेक ये दोनो निर्मलनेत्र हैं ।

३. ससार विपवृक्षस्य, द्वे फले अमृतोपमे ।
सुभापितरसास्वाद, सगति सुजनै सह ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-३०

ससाररूपी विपवृक्ष के दो फल अमृतोपम हैं—एक तो सुभापित रस का आस्वादन और दूसरा सज्जनो का संगम ।

४. सङ्ग सर्वात्मना त्याज्य, स चेत् त्यक्तु न शक्यते ।
स सद्भि सह कर्त्तव्य, सता सङ्गो हि भेपजम् ॥

—हितोपदेश ४।६३

सभी प्रकार के सग (आसक्ति) का त्याग करो । न कर सको तो सत्पुरुपो का सग करो, क्योंकि सत्सग ही दिव्य औपधि है ।

५. सद्भिरेव सहासीत, सद्भि कुर्वीत सगतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्री च, नासद्भिः किंचिदाचरेत् ॥

—सुभापितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ-१५६

मज्जनो के माथ बैठो । उन्ही की मगति करो । तथा उन्ही से विवाद एवं मित्रता करो । दुर्जनो के साथ कुछ भी मत करो ।



५ सत्संगति का प्रभाव

१. जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्य,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेत. प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्ति,
सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम् ?

—भर्तृहरि-नीतिशतक-२३

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान की वृद्धि करती है, पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशों दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। अब तुम ही कहो ! सत्संगति मनुष्यों का क्या काम नहीं करती ?

२ मित्तो हवे सत्तपदेन होति, सहायो पन द्वादसकेन होति।
मासड्ढमासेन च ञाति होति, ततुत्तरिं अत्तसमो पि होति॥

—जातक-१।८३।८३

सत्पुरुषों के साथ सात कदम चलने से व्यक्ति मित्र हो जाता है, बारह कदम चलने से सहायक हो जाता है। महीना-पन्द्रह दिन साथ रहने से ज्ञाति बन्धु बन जाता है, और इससे अधिक साथ रहने से तो आत्मा के समान ही हो जाता है।

३ दर्शन-ध्यान-संस्पर्शाद्, मत्स्यी कूर्मी च पक्षिणी।
शिशुं पालयते नित्यं, तथा सज्जनसंगति.॥

—चाणक्यनीति ४।३

मछली, कछुई और पक्षिणी क्रमश जैसे—दर्शन, ध्यान और स्पर्श से

बच्चो का पालन करती हैं, सत्संगति भी ठीक वैसे ही व्यक्ति का सरक्षण करती है।

४. क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका।

—शङ्कराचार्य

क्षणभर की सत्सगति ससारसमुद्र से तारने के लिए एक नाव के समान हो जाती है।

५ तात ! स्वर्ग- अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव-सतसग ।।

—रामचरितमानस

६. तुलयामि लवेनापि, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य, मर्त्याना किमुताशिप. ।।

—श्रीमद्भागवत १।१८।१३

भगवत्संगी प्रेमियों के निमेप-मात्र सङ्ग की तुलना स्वर्ग-अपवर्ग के साथ भी नही की जा सकती, फिर मर्त्यलोक के राज्यादि सम्पत्ति की तो बात ही क्या !

७. दस हजार वर्ष की तपस्या और आधे क्षण का सत्सग—

एक वार महर्पि विश्वामित्र और वशिष्ठ मे एक विवाद हो गया। विश्वामित्र तप को वडा कह रहे थे और वशिष्ठ सत्संग को। निर्णय के लिए दोनो शेपनाग के पास पहुचे। शेपनाग ने कहा—मैं पृथ्वी के भार से खिन्न हूँ। कोई इसे थोडी देर के लिए ले ले तो मैं निर्णय कर सकता हूँ। विश्वामित्र बोले—मैं दस हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ। मेरे शिर पर पृथ्वी ठहर जाये। पृथ्वी डगमगाने लगी। सारे विश्व में सहलका मच गया। यह दृश्य देखकर वशिष्ठ ने आधे क्षण के सत्सग के

फल का सङ्कल्प किया तो पृथ्वी उनके सिर पर टिक गई। जब शेष पृथ्वी को वशिष्ठ से वापस लेने लगे तब विश्वामित्र ने कहा—हमारा निर्णय तो कर दीजिये। शेष ने हंसकर फरमाया—क्या आप नही समझे कि आधे क्षण के सत्संग की बराबरी दश हजार वर्ष की तपस्या नही कर सकती ?

—कल्याण 'संत अंक' से

८. ज्ञान बढ़े गुणवंत की संगत, ध्यान बढ़े तपसी संग कीन्हे।
मोह बढ़े परिवार की संगत, लोभ बढ़े धन मे चित दीन्हे।
क्रोध बढ़े नर मूढ की संगत, काम बढ़े तिरिया संग भीने।
बुद्धि-विचार-विवेक बढे, 'कवि दीन' सुसज्जन संगति लीन्हे।

९ बिनु सतसंग विवेक न होई, रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।

—रामचरितमानस

१०. सत संगत परताप तें, मिटे अविद्या-जाल।
बार-बार बरनन करे, नानक देव-दयाल॥

११. संगति का फल देखलो, वही तिली वही तेल।
जाति नाम निज छोडकर, पाया नाम फुलेल॥

१२. असज्जनः सज्जनसङ्गि-संगात्,
करोति दुःसाध्यमपीह साध्यम्।
पुष्पाश्रयाः शंभुशिरोऽधिरूढा,
पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्॥

—कल्पतरु

सतसंगी के संग से असज्जन भी दुःसाध्य कार्य साध लेता है। फूलों के सहारे शिवजी के मस्तक पर चढी हुई चींटी भी चन्द्रबिम्ब का चुम्बन कर लेती है।

१३. कश्चिदाश्रय-सौन्दर्याद्, धत्ते शोभामसज्जनः ।
प्रमदालोचनन्यस्तं, मलीमसमिवाञ्जनम् ॥

—हितोपदेश २।१५१

आश्रय की सुन्दरता से असज्जन भी शोभित हो जाता है। जैसे—स्त्री की आंखों में डाला हुआ काला कज्जल।

१४. कुशल वैद्य की संगति से विष अमृत का काम करने लगता है। चतुर कलमकार के हाथ पाकर नीबू नारंगी का रूप ले लेता है।

१५. कालियो गोरियै कनै बैठे, रंग नहीं पण अक्कल तो आवे ही।

—राजस्थानी कहावत

१६. भगवान महावीर के सत्संग से अर्जुनमाली एवं चण्डकौशिक तर गये। जम्बूकुमार के सत्संग से प्रभवचोर एवं सप्तऋषियों के सत्संग से डाकू अग्निशर्मा (जो आगे चलकर महर्षि वाल्मीकि कहलाए) पार हो गये। महात्मा बुद्ध के सम्पर्क से कलिंग-विजय के बाद सम्राट् अशोक दयावान बन गया तथा उन्हीं के उपदेश से डाकू अंगुलिमाल (जो राजा प्रसेनजित् से भी नहीं पकड़ा गया) प्रतिबुद्ध होकर साधु बन गया। इसी प्रकार यूरोपीय प्रसिद्ध चर्च के अधिष्ठाता सेंटपाल (जो डाकू-लुटेरे थे) सत्संगति से ईसाईधर्म के महान् प्रचारक बन गए।

—अध्ययन के आधार पर

१७. सत्संग में जाकर भी यदि कुछ लाभ नहीं कमाया तो उसके लिए ये ही कहावतें चरितार्थ हुईं, जैसे—बारह वर्ष दिल्ली में रहकर भी भाड़ झोंकी, चौबीस वर्ष अफ्रीका में रहकर रुई धुनी, छत्तीस वर्ष अमेरिका में रहकर खाक छानी, दस लाख वर्ष नंदनवन में रहकर अप्सराओं की कुश्तियाँ बिछाई और करोड़ वर्ष इन्द्रलोक में रहकर ढोल बजाया।

—संकलित



६ दुर्जन (दुष्ट)

१. तक्षकस्य विष दन्ते, मक्षिकाया शिरोविषम् ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे, सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥

—चाणक्यनीति १७।८

साप के दात मे, मक्खी के शिर मे और बिच्छू के केवल पूंछ मे ही विष होता है, किन्तु दुर्जन के सारे ही अग विषमय है ।

२ विषधरतोऽप्यतिविषम, खल इति न मृषा वदन्ति विद्वास ।
यदय नकुलद्वेषी, मुकुलद्वेषी पुन पिशुन ॥

—सुबन्धु

दुर्जन सांप से भी ज्यादा खतरनाक है, यह बात विद्वान सत्य ही कहते हैं, क्योकि सांप तो नकुल का ही द्वेषी है, दुर्जन तो मुकुल-सज्जनो से भी द्वेष रखता है।

३ दुर्जनस्य विशिष्टत्व, परोपद्रवकारणम् ।
व्याघ्रस्य चोपवासेन, पारण पशुमारणम् ।

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-५६

दूसरो को उपद्रव करना ही दर्जनो की विशेषता है । जैसे—पशुओ को मारना ही बाघ के उपवास का पारणा होना है ।

४. नदीरयस्तरूणामङ्घ्रीन् क्षालयन्नप्युन्मूलयति ।

—नीतिवाक्यामृत

नदी का वेग वृक्षो के चरणो का क्षालन करता हुआ भी उन्हे उखाडता ही है । (ऐसे ही दुर्जन पैरो मे गिरकर भी नाश करता है ।)

. क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो, रुष्टस्तुष्ट क्षणे-क्षणे ।
अनवस्थित्तचित्तस्य, प्रसादोऽपि भयंकर. ॥

—घटखर्पर का नीतिसार

जो क्षण-क्षण मे रुष्ट एवं तुष्ट होता रहता है, ऐसे अस्थिर चित्तवाले तुच्छ व्यक्ति की प्रसन्नता भी भयकर है ।

६. फांस मिसरी की भले हो, किरकिराती है बराबर ।
भूल चाहे प्यार की हो, रग लाती है बराबर ॥
लाख फूलो में बसाओ ! गन्ध की चादर ओढाओ ।
किन्तु कांटा तो चुभेगा, सौ तरह उसको रिझाओ ॥

—रामानन्द दोषी

७. स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजङ्गम. ।
पालयन्नपि भूपालः, प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥

—पञ्चतन्त्र ३।८२

हाथी स्पर्श करता हुआ, साप सूंघता हुआ, राजा पालन करता हुआ एवं दुर्जन हँसता हुआ भी मार डालता है ।

८. असूयकः पिशुन· कृतघ्नो दीर्घरोपइति कर्मचाण्डालाः ।

—नीतिवाक्यामृत २२।११

ईर्ष्यालु, चुगल, कृतघ्न और अधिक समय तक क्रोध रखनेवाला—ये कर्म-चाण्डाल हैं ।

९. चुगल वधक गुरुसेजरति, चोर कृपण गुणचोर ।
कुण वधतो घटतो कवण, एकज गिरि का टोल ॥

१०. सबकी ओषधि जगत मे, खल की ओषधि नाहि ।
ओषधि हू चूरन हुवे, परिके खल के मांहि ॥

११. सर्पाणां च खलाना च, सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ।
अभिप्रायाः न सिध्यन्ति, तेनेदं वर्तते जगत् ।

— पञ्चतन्त्र ५।४४

१२. खल करोति दुर्वृत्त, नूनं फलति साधुषु ।
दशाननोऽहरत् सीता बन्धन स्याद् महोदधे. ।

—हितोपदेश ३।२२

दुष्ट, दुष्टता करता है और उसका फल सज्जनो को भोगना पडता है।
देखो ! रावण ने सीता का हरण किया और समुद्र को बँधना पडा।

१३ गलियो एकज पान, सगलाहि विगाडै ।
भरियो माटो दूध, छांट काजी री फाड़े ॥
कुल मे हुवे कपूत, वंश आपणो लजावै ।
पंचा थापी बाड, चुगल चिमठियाँ उठावै ॥
सूत मे कुसूत भेलो करै, पापी ने काढो परो !
कवि गद कहे सुण राय हर ! पंचां मे खडवो बुरो ॥

१४. साँप किसका बाप और अग्नि किसकी माँ ?

—हिन्दी कहावत

१५. सर्पा रै किसी सैंध ।

- सर्प रै वच्चै रो काई छोटो र कांई मोटो ?
- दीसती तो गिलारी, कर जावै बिच्छू रो गटको ।

१६. दीसत दीसे टाबर्‌यो, बोलै घणो नरम ।
जाणे-वीणै काई नही, फोड नाखे करम ॥

—राजस्थानी कहावतें

१७. बिल्ली का खेल, चूहे की मौत ।

—हिन्दी कहावत

७

दुर्जनों का स्वभाव

१. निसर्गतो ऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

दुर्जन स्वभाव से ही मन के मैले होते हैं।

२. प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः ।

—किरातार्जुनीय १४।२१

दुष्ट लोग स्वभाव से ही सज्जनो के शत्रु हुआ करते हैं।

३. अकरुणत्वमकारणविग्रह', परधने परयोपिति च स्पृहा।
सुजनवन्धुजनेष्वसहिष्णुता, प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक-५२

निर्दयीपन, वेमतलव लडना, परधन और परस्त्री की इच्छा रखना, स्वजन-वन्धुओ से ईर्ष्याभाव रखना—ये दुर्जनो के स्वाभाविक लक्षण हैं।

४. त्यक्त्वा निजप्राणान्, परहितविघ्न खल करोत्येव ।
कवले पतिता सद्यो, वमयति मक्षिकाऽन्नभोक्तारम् ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जन अपने प्राण देकर भी दूसरो के हित मे विघ्न करता है। जैसे-कवल मे पडी हुई मक्खी भोजन करनेवाले को वमन करवा देती है।

५. देखो ! सण की दुष्टता, नेक न आवे लाज ।
खाल खिचावें आपणी, पर-वन्धन के काज ॥

६. नाक वाढी ने अपशकुन करवा ।

—गुजराती कहावत

७. घर तो घोसी रो बलसी पण सोहरा ऊंदरा ही को रेवैनी ।

- भाई भलाई मर जाओ भोजाई रो वट निकलणो चाहिजै ।
- खाट गाय आप तो दूध को देवै नी, दूजी रो ढोलाय दै ।
- मिनकी दूध पीवै नही तो ढुला तो देवै ।

—राजस्थानी कहावतें

८. न विनापरवादेन, रमते दुर्जनो जनः ।
काक सर्वरसान् भुङ्क्त्वा, विनाऽमेध्यं न तृप्यति ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जन परनिंदा किये विना खुश नही होता। रसीले पदार्थ खाकर भी काक (कौवा) गंदगी मे मुँह दिए विना तृप्त नही होता।

९. अग्निरिव स्वाश्रयमेव दहन्ति दुर्जना. ।

—नीतिवाक्यामृत

अग्नि की तरह दुर्जन अपने आश्रय को ही जला देते हैं।

१० खल सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनोबिल्वमात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति ॥

—शाकुन्तल

दुष्ट व्यक्ति दूसरो के सरसो जितने छोटे-छोटे दोषो को भी देख लेता है, किन्तु अपने विल्वफल जितने बड़े दोष को भी नही देखता।

११. स्तोकेनोन्नतिमायाति, स्तोकेनायात्यधोगतिम् ।
अहो ! सुसदृशी चेष्टा, तुलायष्टेः खलस्य च ॥

—शार्ङ्गधर

तराजू की डंडी और दुष्ट व्यक्ति—इन दोनो की प्रवृत्ति एक जैसी है। ये थोड़े मे ऊँचे एवं थोडे मे नीचे हो जाते हैं।

१२. त्यजति च गुणान् सुदूरं, तनुमपि दोष निरीक्ष्य गृह्णाति ।
मुक्त्वाऽलकृतकेशान्, यूकामिव वानरः पिशुनः ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-६०

दुर्जन बड़े-बड़े गुणो को छोड़कर छोटे से दोष को उसी तरह खोजकर पकड़ता है, जैसे—वानर शृंगारयुक्त केशों मे से केवल जूं को ही पकड़ता है।

१३. अवेक्षते केलिवन प्रविष्ट., क्रमेलक. कण्टकजालमेव।

—बिल्हणकवि

अनेक फलो-फूलो वाले क्रीडावन मे चले जाने पर भी ऊँट तो काटेवाले वृक्षो को ही खोजेगा।

१४. सुपक्वमपि निम्बस्य, फलं बीजे कटु स्फुटम्।
वयसः परिणामेऽपि, यः खल' खल एव स॥

—विवेकविलास

निम्बू का फल पक जाने पर भी उसका बीज कड़ुवा ही रहता है। बूढा हो जाने पर भी दुष्ट-दुष्ट ही रहता है।

१५. बिखरे काटे राह में, सज्जन रहे बुहार।
हँस-हँस के दुर्जन वहाँ, और रहे हैं डार॥

—दोहासंदोह

१६. भूंडो भूंडा नो भाव भज्या वगैर न रहै,
खोडी बिलाडी, अपशकुन कर्यां वगैर न रहे।

—गुजराती कहावत

१७. तिशनगारा नुमायद अंदर ख्वाब।
हमा आलम व चश्म चश्मये आब॥

—फारसी कहावत

बिल्ली को स्वप्न मे भी मांस दीखता है।

१८. चोर ने कहे चोरी कर, कुत्ते ने कहे भूंस अने साह ने कहे जाग।

—राजस्थानी कहावत

१९. आंगली आपीए तो पहोंचो पकडे अने हाथ आपीए तो गलुं पकडे अने बेस कहे तो सूई जाय।
बाबाजी, "नमो नारायण" तो कहे—तेरे घर घामा।

—गुजराती कहावतें

२० प्राक् पादयो: पतति खादति पृष्ठमांस,
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्क:,
सर्वं खलस्य चरितं मशक करोति॥

—हितोपदेश १।८०

जैसे—दुष्ट पुरुष पहले पैरों में गिरता है, फिर दूसरों की बुराई करता है। पहले कानों में मीठी-मीठी बातें करता है और फिर मौका पाकर अन्दर घुस जाता है। मच्छर भी दुष्टों की सी सारी क्रियाएं करता है।

२१. तीखी निष्ठुर कुटिल अति, रखती जरा कृपा न।
इस अन्तिम गुण से पड़ा, तेरा नाम कृपान॥



८ दुर्जनसंगपरित्याग

१. अलं बालस्स संगेण।

—आचारांग १।२।५

बाल-अज्ञानियो की संगति से दूर रहना चाहिए।

२. खुड्डेहि सह संसग्गिं, हास कीडं च वज्जए।

—उत्तराध्ययन १।९

क्षुद्रजनो का ससर्ग एवं उनके साथ हास्य और क्रीडा नही करनी चाहिए।

३ दु सग सर्वथैव त्याज्य.। काम-क्रोध-मोह-स्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश-सर्वनाश कारणत्वात्।

—भक्तिसूत्र ४३-४४

दु सग का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए, क्योकि वह काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है।

४. दुर्जनः परिहर्त्तव्यो, विद्यया भूपितोऽपि सन्।
मणिनालंकृतः सर्प., किमसौ न भयकर.॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ५३

विद्या मे अलकृत हो तो भी दुर्जन छोड़ने योग्य है, क्योकि मणि से विभूपित होने पर भी सांप भयकर ही है।

५. बदो की सोहबत मे मत बैठो, है उसका अंजाम बुरा।
बद न बने पर बद कहलाए, बद अच्छा, बदनाम बुरा॥

—उर्दू शेर

६ शकट पञ्चहस्तेन, दशहस्तेन वाजिनम्।
हस्ती हस्तसहस्रेण, देशत्यागेन दुर्जनम्॥

—चाणक्यनीति ७।७

बैलगाडी को पाँच हाथ से, घोड़े को दश हाथ से, हाथी को हजार हाथ से और दुर्जन को देश त्यागकर भी छोड देना चाहिए ।

७. दुर्जनेन समं वैरं, प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम् ॥

—हितोपदेश १।८०

दुर्जन के साथ वैर और प्रीति दोनो ही नही करने चाहिए । वह अंगार के समान है । अंगार गर्म हो तो हाथ को जलाता है और ठंडा हो तो हाथ को काला करता है ।

८. अलस अणुबद्ध वेर, सच्छंदमती पयहीयव्वो ।

—व्यवहारभाष्य १।६६

आलसी, वैर-विरोध रखनेवाले और स्वच्छन्दाचारी का साथ छोड देना चाहिए ।

९. त्यज दुर्जनसंसर्ग, भज साधु-समागमम् ।
कुरु धर्ममहोरात्र, स्मर नित्यमनित्यताम् ॥

—चाणक्यनीति १४।२०

दुर्जनो का संसर्ग छोडो, सज्जनो का समागम करो । दिन-रात धर्म करो और सदा संसार की अनित्यता का चिन्तन करो ।



६ कुसंगति का असर

१. संगत जिसी रंगत, सगत जिसो असर।

—राजस्थानी कहावत

२. सगतेवो रग, वान न आवे पण शान आवे, गधेडा साथे घोडु बाँधे तो भूंकता न सीखे पण आलोटता तो सीखेज।

● दालनी सगति थी चोखो नर मटी नारी थयो।

—गुजराती कहावतें

३. यदि तुम सदा लगडो के साथ रहोगे तो लगडाना सीख जाओगे।

—लैटिन लोकोक्ति

४. फाख्ता का जब कौवो से संयोग होता है तो उसके पर तो श्वेत रहते हैं, पर हृदय काला हो जाता है।

—जर्मन लोकोक्ति

५. कोयला री दलाली में काला हाथ।

—राजस्थानी कहावत

● कुसंगति मे जाता देखकर पिता ने पुत्र को रोका। पुत्र बोला—मेरे पर असर कहां होता है ? पिता ने उसके हाथ मे कोयला देकर समझाया कि जैसे—इसका दाग अवश्य लगता है, उसी प्रकार कुसगति का असर भी होता है।

६. चिराग गुल पगड़ी गायब।

—पारसी कहावत

१० कुसंगति से हानि

१. खलसगेन किं नाम न भवत्यनिष्टम् ?

—नीतिवाक्यामृत

दुर्जन के सग से क्या अनिष्ट नही होता ?

२. असता सङ्गदोषेण, साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणेगत ॥

—पञ्चतन्त्र १।२७४

दुष्टो के सग से साधु-सत्पुरुष भी विगड जाते हैं। देखो दुर्योधन के प्रसंग से भीष्मपितामह भी गोहरण जैसे निकृष्ट कार्य के लिये चले गये।

३. अहो ! दुर्जन संसर्गाद्, मानहानि: पदे-पदे ।
पावको लोहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जनो की संगति से कदम-कदम पर मानहानि होती है। देखो ! लोहे की संगति से अग्नि भी मुद्गरो से कूटी जाती है।

४. रहिमन नीचन संग वसि, लगत कलक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सव ताहि ॥

५. कर कुसग चाहत कुशल, तुलसी यह अफसोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावण वसे पड़ोस ॥

६. सगति भली न श्वान की, दोनूं कानी दुःख ।
खीज्या काटै टांगड़ी, रीझ्यां चाटै मुख ॥

७. काक रु हंस वसे तरु ऊपर, दोहु परस्पर चित्त मिलायो।
सांझ समे कोउ भूपति खेलत, छांह निहार जसा तिहां आयो।
काग कुजात ने बींठ करी, नृप तान के बान सुजान पठायो।
काग गयो रह्यो हंस सुवंश को, नीच की संगति मृत्यु हि पायो॥

—भाषाश्लोकसागर

८. दुर्जन दूषितमनसा, पुंसा सुजनेऽप्यविश्वासः।
वालः पयसा दग्धो, दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति॥

—प्रसंगरत्नावली

दुष्टो द्वारा ठगे गये पुरुषो का सज्जनो मे भी अविश्वास हो जाता है। जैसे—दूध मे जला हुआ बालक दही को भी फूंक मारकर खाता है।

९. पिशुन छल्यो नर सुजन सौं, करत विशास न चूक।
जैसे दाझ्यो दूध को, पिवत छाछ को फूंक॥



११ दुष्टों का सुधार कठिन

१. न दुर्जनः साधुदशामुपैति, बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन, न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥

—चाणक्यनीति ११।६

अनेक प्रकार से शिक्षा देने पर भी दुर्जन सज्जनता को प्राप्त नही होते। जैसे—बार-बार दूध-घृत मे सींचा हुआ भी नीम का वृक्ष मीठा नही होता।

२ नलिका गतमपि कुटिलं, न भवति सरलं शुनः पुच्छम्।
तद्वत् खलजन हृदयं, बोधितमपि नैव याति माधुर्यम्।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २६

नली मे रहने पर भी कुत्ते की पूँछ सीधी नही होती, टेढी ही रहती है। इसी प्रकार बोध देने पर भी दुष्टो का हृदय मधुर नही होता।

३. काली ऊन कुमाणसां, चढै न दूजो रंग। —राजस्थानी कहावत

४. खलः सत्क्रियमाणोऽपि, ददाति कलहं सताम्।
दुग्धधौतोऽपि किं याति, वायसः कलहंसताम् ॥

—शार्ङ्गधर

सत्कार करने पर भी दुर्जन सज्जनो को क्लेश ही देता है, दूध से धोने पर भी काग हंस नहीं बनता।

५. Black will take no other hue,
ब्लैक विल टेक नो अदर ह्यू। —अंगरेजी कहावत

शूकर धोने से बढ़िया नही होता।

६. गधेड़ी गगा नहाय पण घोडी न
सीदी भाई सो मण सावुए

७. कि मर्दितोऽपि कस्तू

कस्तूरी से मथने पर

८ अपि निर्वाणमाया।
आग बुझ भले ही जा।

६ गधे को उटादो जो
दुलत्ता चलाना न
जाहिल के नेकी-बदी
के होते हैं अन्धे के दिन-रात

१०. दुर्जन कबहु न सूधरै, मीं सावन के सग।
मूंज भिजोवै ग ग मे, ज्यूं भीजै ज्यू तंग

११. दुष्ट से अलग होते समय एक साधु रोने लगा
"मेरे साथ इतने दिन रह कर भी तू न
रहा हूँ।"

१२. विगड़्या तीवण कदे आगै ही सुधर

१३ दुगुनी फीस—दो विद्यार्थी बीन बजाने व
था और दूसरा कुछ सीखा हुआ। शिक्षक
और दूसरे से पूरी। क्योंकि नए मनुष्य को
कठिन है।

१२ दुर्जनों के साथ व्यवहार

१. दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जन तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालन यथा ।

—सुभाषितरत्नभाडागार पृष्ठ ५५

जैसे—मुंह धोने से पहले गुदा धोई जाती है, उसी प्रकार मैं सज्जनो से पहले दुर्जनो को नमस्कार करता हूँ।

२ शाम्येन् प्रत्यपकारेण, नोपकारेण दुर्जन ।

—कुमारसभव

दुर्जनो को अपकार-बुराई से शात करना चाहिए, उपकार-भलाई से नही।

—स्ती ह्यङ्कुशमात्रेण, वाजी हस्तेन ताड्यते ।
लकुटहस्तेन, खड्गहस्तेन दुर्जनः ।

—चाणक्यनीति ७।८

अकुश से, घोडो को हाथ से, सीगवाले जन्तुओ को
नि को तलवार से मारा जाता है।

ना च, द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
वा, दूरतो वा विसर्जनम् ॥

—चाणक्यनीति १५।३

के दो ही इलाज हैं—जूतो से उनका मुंह तोड देना या
।

जं मत्त, रण्डा च बहुभाषिणीम् ।
मदोन्मत्त, दूरत परिवर्जयेत् ।

—सुभाषितरत्न भांडागार, पृष्ठ १६१

६. गधेड़ी गगा नहाय पण घोडी न थाय,
सीदी भाई सौ मण साबुए धुए तो पण काला ना काला ।

—गुजराती कहावत

७. कि मर्दितोऽपि कस्तूर्या, लशुनो याति सौरभम् ?

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

कस्तूरी मे मथने पर भी लहसुन क्या अपनी दुर्गन्धि को छोडता है ?

८ अपि निर्वाणमायाति, नानलो याति शीतताम्।
आग बुझ भले ही जाय ! ठडी नही होती ।

६ गधे को उढादो जो मखमल की झूल,
दुलत्ता चलाना न जाएगा भूल ।
जाहिल के नेकी-वदी वात एक,
के होते है अन्धे के दिन-रात एक ॥ —उर्दू शेर

१०. दुर्जन कबहु न सूधरे, सौ साधन के सग ।
मूंज भिजोवै ग ग मे, ज्यू भीजे ज्यू तंग ।

११. दुष्ट मे अलग होते समय एक साधु रोने लगा । कारण पूछने पर कहा—"मेरे साथ इतने दिन रह कर भी तू नही सुधर सका इसलिये रो रहा हूँ।"

१२. विगड्या तीवण कदे आगे ही सुधर्या हा ।

—राजस्थानी कहावत

१३. दुगुनी फीस—दो विद्यार्थी वीन वजाने की कला सीखने गए । एक नया था और दूसरा कुछ सीखा हुआ । शिक्षक ने नए से आधी फीस मागी और दूसरे से पूरी । क्योंकि नए मनुष्य की अपेक्षा विकृत को सुधारना कठिन है ।



१२ दुर्जनों के साथ व्यवहार

१. दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालनं यथा ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ५५

जैसे—मुंह धोने से पहले गुदा धोई जाती है, उसी प्रकार मैं सज्जनों से पहले दुर्जनों को नमस्कार करता हूँ।

२. शाम्येत् प्रत्यपकारेण, नोपकारेण दुर्जनः ।

—कुमारसम्भव

दुर्जनों को अपकार-बुराई से शांत करना चाहिए, उपकार-भलाई से नहीं।

३ हस्ती ह्यङ्कुशमात्रेण, बाजी हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लकुटहस्तेन, खड्गहस्तेन दुर्जनः ।

—चाणक्यनीति ७।८

हाथी को केवल अंकुश से, घोड़े को हाथ से, सींगवाले जन्तुओं को लाठी से और दुर्जन को तलवार से मारा जाता है।

४ खलानां कण्टकानां च, द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानद्मुखभङ्गो वा, दूरतो वा विसर्जनम् ॥

—चाणक्यनीति १५।३

दुष्टों और कांटों के दो ही इलाज हैं—जूतों से उनका मुंह तोड़ देना या उनसे दूर रहना।

५ खरं श्वानं गजं मत्तं, रण्डां च बहुभाषिणीम् ।
क्रोधवन्तं मदोन्मत्तं, दूरतः परिवर्जयेत् ।

—सुभाषितरत्न भांडागार, पृष्ठ १६१

गदहा, कुत्ता, मत्त हाथी, अधिक बोलनेवाली विधवा स्त्री, क्रोधी और मदोन्मत्त—इन सबका दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

६. खीरा मुख तें काटिये, मलिये लौण लगाय।
रहिमन कड़ुवे मुखन को, चहिये यही सजाय।

७. मुख ऊपर मीठास, घटमांही खोटा घड़े।
इसड़ा सूं इकलास, राखीजे नहि राजिया।

—सोरठा संग्रह

८. शठे शाठ्यं समाचरेत्।

—संस्कृत कहावत

दुष्ट से दुष्टता करनी चाहिए।

९. Tit for tat
टिट फोर टॅट —अंग्रेजी कहावत
जैसे को तैसा।

१०. आप सूं करै बी रैं बाप सूं करणी।
● कांकरै री मारसी, जिको पसेरी री खासी।

—राजस्थानी कहावतें



१३ धूर्त-दगाबाज

१. मुख पद्मदलाकारं, वाचा चन्दनशीतला।
हृदय क्रोधसयुक्त, त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५७

धूर्त व्यक्ति के तीन लक्षण हैं। उसका मुंह कमलपत्रवत् खिला होता है वाणी चन्दनवत् शीतल होती है और हृदय क्रोध से भरा हुआ होता है।

२ असती भवति सलज्जा, क्षार नीरं च शीतल भवति।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्त जन ॥
—पञ्चतन्त्र १।४५१

कुलटा स्त्री अधिक लज्जा करती है, खारा जल ज्यादा ठंडा होता है, कपटी व्यक्ति विवेक अधिक दिखलाता है और धूर्त मनुष्य मीठा बोलता है।

३. धूर्त-सम्बन्धीकहावतें—

- टु मच करटिसी टु मच कैंफ्ट।
—अंग्रेजी कहावत
- अतिभक्तिश्चौरस्य लक्षणम्।
—सस्कृत कहावत
- अतिभक्ति चारेर लखन।
—बंगला कहावत
- शकल मोमना, करतुत काफरां।
—पंजाबी कहावत

- बेंवतां-बेंवतां आंख्यां में घूड नाख दे।
- बेच र नगात को भरे नी।
- रोटी खाणी शक्कर स्यूं, दुनियां ठगणी मक्कर स्यूं।

—राजस्थानी कहावतें

- ठाठ तिलक और मधुरी बानी, दगाबाज की यही निशानी।
- ओछी गर्दन दगाबाज।
- आंख का अन्धा गांठ का पूरा। उंगली पकड़ते पहुंचा पकड़ा।

—हिन्दी कहावतें

४. नराणां नापितो धूर्तः, पक्षिणां चैव वायसः॥
चतुष्पदां शृगालस्तु, स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी॥

—चाणक्यनीति ५।२१

• पुरुषों में नाई, पक्षियों में काग, पशुओं में गीदड़ और स्त्रियों में मालिन–ये धूर्त माने जाते हैं।

५. बिल्ली गुरु बगलो कियो, वरण ऊजलो देख।
पार किसी विध ऊतरे, दोना री गति एक।



१४ ढोंग और ढोंगी

१ जो गुण अपने मे नही है, उसे दिखाने की कोशिश करना ढोंग है।

—कन्फ्यूशियस

२. सफेद कमीज के नीचे गन्दी बनियान हो सकती है, सीता-सावित्री के गीत गानेवालो के कमरे मे कुलटाओ के चित्र हो सकते हैं, गीता-भागवत टेबल पर रखनेवालो के पुस्तकालय मे कोकशास्त्र मिल सकते हैं तथा सुखी का ढोंग करनेवाले अन्दर से परम दुःखी हो सकते हैं। अत बाहर के रूप से अन्दर के गुणो का अन्दाज नही लग सकता।

—आत्मविकास

३. ऊंची दुकान का फीका पकवान। —हिन्दी कहावत

४. मिन्नी केदारककण पहर्‌यो।
- मिन्नी तीर्थां न्हा र आई। —राजस्थानी कहावतें

५. कल का जोगी पांव तक जटा। —हिन्दी कहावत

६ जीवता घूमड़ु पाणी नहि ने मूआं मसाणां मा गाय।
- जीवता सेवया कालजा ने मूआं छाजियानो शोर।
- सो-सो ऊंदरा मारी ने मिन्नीबाई पाटे बेठा।
- नात धणी बदली ने सती थया। —गुजराती कहावतें

७. मारया मार र तीसमारखां बण्या। —राजस्थानी कहावत

१५ सज्जन-दुर्जन का अन्तर

१. मृद्घटवत् सुखभेद्यो, दु सधानश्च दुर्जनो भवति।
सुजनस्तु कनकघटवद्, दुर्भेद्यश्चाशुसधेय ॥

—पञ्चतन्त्र २।३८

दुर्जन को मिट्टी के घडे की तरह फोडना सरल है, किन्तु उसे फिर मे जोडना कठिन है तथा सज्जन को स्वर्ण-घटवत् फोडना कठिन है, किन्तु कदाच फूट जाय तो उसे जोडना मरल है।

२. मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्, कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं, कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥

—हितोपदेश १।१०१

दुरात्माओ का सोचना, कहना और करना भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है तथा महात्माओ के मोचने, बोलने और करने मे समानता होती है।

३. विद्यामदो धनमद-स्तृतीयोऽभिजनो मद ।
मदा एतेऽवलिप्ताना—मेत एव सता दमा ॥

—विदुरनीति २।४४

विद्या का मद, धन का मद और तीमरा ऊँचे कुल का मद—अभिमानियो के लिए तो ये मद है, लेकिन सज्जनो के लिए ये ही दम के माधन हैं।

४. रक्तत्वं कमलाना, सत्पुरुषाणा परोपकारित्वम्।
असतां च निर्दयत्व, स्वभावसिद्ध त्रिपु त्रितयम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८७

कमलो मे रक्तता, सज्जनो मे परोपकार बुद्धि और दुर्जनो मे निर्दयता क्रमश तीनो मे ये तीन बातें स्वभावसिद्ध हैं।

५ शरदि न वर्षति गर्जति, वर्षति वर्षासु नि स्वनो मेघ ।
नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधु करोत्येव ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ४६

शरदृतु मे मेघ गर्जता है—वर्षता नही, किन्तु वर्षाऋतु मे चुपचाप बरसने लगता है। नीच व्यक्ति बोलता है पर करता नही, किन्तु सत्पुरुष बोलता नही—करता है।

६ नालिकेरसमाकारा, दृश्यन्ते हि सुहृज्जना ।
अन्ये बदरिकाकारा, बहिरेव मनोहरा ॥

—हितोपदेश १।६४

सज्जन नारियल के समान ऊपर से कडे होते है और अन्दर मीठे होते हैं एव दुर्जन बेरो की तरह केवल बाहर मे ही मनोहर होते हैं।

७ विद्या विवादाय धन मदाय, शक्ति परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ।

—भवभूति के गुणरत्न से

दुष्टपुरुषो की विद्या विवाद के लिए, धन अभिमान के लिए और शक्ति (बल) दूसरो को दु ख देने के लिए है तथा सज्जनो की पूर्वोक्त चीजें इनसे बिलकुल विपरीत हैं। यथा—विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरो की रक्षा करने के लिए होती है।

८ सत्यज्य शूर्पवद्दोषान् गृह्णाति पण्डित ।
दोषग्राही गुणत्यागी, पल्लोलीव हि दुर्जन ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

पडित छाज की तरह दोषो को छोडकर गुणो को ग्रहण करता है और दुर्जन चालिनी की तरह गुणो को त्यागकर दोषो को ग्रहण करता है।

९. श्लोकस्तु श्लोकतां याति, यत्र तिष्ठन्ति साधवः ।
लकारो लुप्यते तत्र, यत्र तिष्ठन्त्यसाधवः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ४७

साधुओं के पास श्लोक सुयश को प्राप्त होता है और असाधुओं के पास उसका लकार लुप्त होकर वह शोकरूप मे परिणत हो जाता है ।

१०. सूची मुख अरु पीठ सम, दुर्जन-सुजन बखान ।
छिद्र करत इक शठ सहस, पूरत इक गुनवान ॥

११. दुर्जन री किरपा बुरी, भली सज्जन री त्रास ।
जद सूरज गरमी करै, तब बरसण री आस ॥

● दुर्जन री वाता बुरी, भली सज्जन री लात ।
वे वातां लातां जिसी, वे लातां है बात ॥

—राजस्थानी दोहे

१२. गुरु नानक शिष्यो सहित एक गाव मे ठहरे, लोगो ने खूब सेवा की । प्रातः विदा होते समय कहा—उजड जाओ । दूसरे एक गाव मे फिर ठहरे, लोगो ने पत्थर मारे । जाते समय बोले—बसते रहो । शिष्यो के पूछने पर गुरु नानक ने तत्त्व बतलाया—वे सज्जन है, जहां जाएँगे दुनियां को सुधारेंगे और ये बिगाडेंगे, क्योंकि दुष्ट है ।

१३. दुर्जन जाता है जहां, फैलाता है पाप ।
काला करता कोयला, पानी को चुपचाप ॥

—दोहा-संदोह

१४. यात्री ने एक वृद्ध से पूछा—यह गाव कैसा है, मैं यहां बसना चाहता हूं ?

वृद्ध—पहले बता कि तू जहां से आया है, वह गाँव कैसा-क है ?

यात्री—वह तो एक नरक के समान है ।

वृद्ध—तो फिर यह गाव उससे भी खराब है ।

इतने मे दूसरे यात्री ने आकर पूछा—गाँव कैसा है ?

वृद्ध—तेरेवाला कैसा-क है ?

यात्री—मेरेवाला तो स्वर्ग जैसा है।

वृद्ध—यह उससे भी अच्छा है।

पहला विस्मित होकर तत्त्व पूछने लगा।

वृद्ध ने कहा—बुरे के लिए सारा संसार बुरा है एवं अच्छे के लिए अच्छा है, अतः तू खुद अच्छा बन।



१६ भलाई-सज्जनता

१. भलाई-बुराई का अभाव नही, वरन् उस पर विजय है।

—सर अर्नेस्ट बोर्न

२. संपूर्ण भलाई और श्रेष्ठता का किरीट है—बन्धुत्व की भावना।

—एडविन मार्कहम

३. भलाई जितनी अधिक की जाती है, उतनी ही अधिक फैलती है।

—मिल्टन

४. जो नेकी लेकर आए, उसके लिए उसका दसगुना है। जो बदी लेकर आये, उसे उसका बराबर बदला दिया जाएगा, उस पर जुल्म नही किया जाएगा।

—कुरान ६।१६०

५. जो व्यक्ति भलाई से प्रेरित होकर भलाई करता है, वह न तो प्रशंसा का आकांक्षी होता है और न पुरस्कार का।

—विलियम पेन

६. हमारा उद्देश्य संसार के प्रति भलाई करना है, अपना गुणगान करना नही।

—विवेकानन्द

७. नेकी कर दरियाव मे डाल।

—हिन्दी-कहावत

८. बुराई का बदला भलाई से दो।

—कुरान २३।९६

९ बुराई करने के अवसर तो दिन मे सौ-सौ वार आते हैं, किन्तु भलाई का अवसर तो वर्ष मे ही एक बार आता है।

—वाल्टेयर

१०. जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, ताको है तिरसूल ॥

—कबीर

11 Bless them those curse you

—बाइबिल

ब्लेस देम दोज कर्स यू।
तुम्हे शाप दे, उन्हे भी आशीर्वाद दो।

12. Love your enemies

—अंग्रेजी कहावत

लव योर एनीमीज !
तुम्हारे शत्रुओ से भी प्रेम करो।

१३ समर्थगुरु रामदास के शिष्यो ने खेत से ईख तोड ली। मालिक ने गुरु-सहित शिष्यो को पीटा। पता चलने पर राजा ने खेतवाले को बुलाकर गुरुजी से पूछा—इसे क्या सजा दू ? गुरु ने कहा—जगात माफ करदो।

१४ श्रावक बनारसीदासजी ने सडक पर पेशाब किया। सिपाही ने थप्पड मारा। उन्होने बादशाह शाहजहाँ से कहकर उसकी नौकरी बढवाई।

१५. मजबूतीपनो रखनो मन में, दुख दीनपनो दरसावनो ना।
वहनो कुलरीत सुमारग में, हरितें हिय हेत हटावनो ना ॥
"चिमनेश"! खुशी हंस बोलन मे, बिन स्वारथ वैर वसावनो ना।
जग जेती भलाई बने सो करो, मर जावनो है फिर आवनो ना ॥१॥
घर स्वारथ हो या कुस्वारथ हो, कहि बात पिछे मिट जावनो ना।
हरिनाम भरोसे कियो सो कियो, करि काम पिछे पिछतावनो ना ॥
दुख आनि परे सहनो सब ही दुख देख घनो घबरावनो ना।
जग जेती भलाई बने सो करो,मर जावनो है फिर आवनो ना ॥२॥

५. कोई खूबी नही होती है, जिस इन्सान मे 'दानिश'।
समझता फख्र अपना है, वह औरो की बुराई मे ॥

—उर्दू शेर

६. Evil to him who evil thinks

—अंग्रेजी कहावत

इविल टु हिम, हू इविल थिक्स।
बुरा पराया जो करे, बुरा आपका होय।

७. चाह करना चाह दरपेश।

—पारसी कहावत

कुआं खोदनेवाले के आगे कुआं।

८. हार्म सेट हार्म गेट।

—अंग्रेजी कहावत

कर बुरा हो बुरा।

९. पुवा वणाया चीनी घाली, सता ने जीमावण हाली।
कीधा स्त्री खाधा भरतार, खाड खणे तो कूवो त्यार ॥
साधु को मारने के लिए सेठाणी ने मीठा जहर डालकर … बनाए,
लेकिन उन्हे उसी के पति ने खाया और मृत्यु को प्राप्त …

१०. रुपिया दीजो रोकडा, मत दीजो … ।
घर में आधो घाल ने, काटी लो …

ब्राह्मण के साथ बुराई करने से पुर … कटी।

११. बुरा किसी का मत करो, गर्चे …
बुरा बुराई का करो, बेशक …

१२. कोयला खासी जिकं री मुंहडो कालो हुसी।

● सेर नै सवा सेर त्यार है।

—राजस्थानी कहावतें

१३. विलाडी ने कह्यो शीकु टूटतु नथी।
राडी-राड ना शाप लागता नथी।

● सती शाप दे नही अने गखणी ना शाप लागे नहि।

—गुजराती कहावतें

१४. कागला री दुराशीष सू ऊँट को मरनी।
ढेढा री दुराशीष सू गाय को मरनी।
राडां री दुराशीष सू टावर को मरनी।

—राजस्थानी कहावतें

१५. बुराई की मां गरीबी है और वाप अज्ञान है।

१६. बुराई नहीं करने के तीन कारण होते हैं—
(१) राज्यभय (२) समाजभय (३) आत्मभय।

१७. पुलिस की बुराइयां—रिश्वत लेना, मद्य पीना, चोरों-डाकुओं में मिल जाना आदि।

१८ लोग कहते हैं, अहिंसा आदि से आज के जमाने में काम नहीं चलता, तो क्या हिंसा आदि से चल सकता है? क्या कोई सच बोलने का एवं क्षमा करने का त्याग कर सकता है?

१९. मूरख रोगी बावलो, बाल त्रिया मतवाल।
इनका बुरा न मानिये, जो देवें लख गाल॥



१८ संगति के अनुसार गुण-दोष

१. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

दोष और गुण संसर्ग-संगति से ही उत्पन्न होते हैं ।

२ संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्या सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक, ६७

तप्तलोहे पर पड़ा हुआ पानी का बिन्दु नष्ट हो जाता है, कमलपत्र पर रहा हुआ वही मोती के समान सुशोभित होता है तथा स्वाती नक्षत्र में समुद्रस्थित सीप के मुंह में पड़ा हुआ वही जलबिन्दु मोती बन जाता है। तात्पर्य यह है कि अधम, मध्यम एवं उत्तम गुण मनुष्यों को संसर्ग से ही प्राप्त होते हैं ।

३. हीयते च मतिस्तात ! हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति, विशिष्टैश्च विशेषताम् ।

—हितोपदेशप्रास्ताविका, ४२

नीचों के समागम से बुद्धि क्षीण होती है, समान-व्यक्तियों के समागम से समान रहती है और विशिष्ट-पुरुषों के समागम से बढ़ जाती है ।

४. अश्वः शस्त्रं शास्त्रं, वीणा वाणी नरश्च नारी च ।
पुरुषविशेषं प्राप्ता, भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥

—हितोपदेश २।७५

घोडा, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, नर और नारी—ये पुरुषविशेष की संगति से योग्य-अयोग्य बन जाते हैं।

५. गुणायन्ते दोपा सुजनवदने दुर्जनमुखे,
गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम्।
महामेघ क्षार पिबति कुरुते वारि मधुर,
फणी क्षीर पीत्वा वमति गरल दुस्सहतरम्॥

—शाकुंतल

सज्जनो के वदन मे दोप गुण बन जाते हैं और दुर्जनो के वदन मे गुण दोप का रूप धारण कर लेते है। मेघ समुद्र का खारा जल लेकर उसे मीठाकर देता है और साप दूध पीकर भी दुस्सह विप छोडता है।

६. सगति शोभा पाइये, सुण सज्जन के वैण।
वो ही कज्जल ठीकरी, वोही कज्जल नैण॥

७. गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिर, लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम्।
जम्बुकालयगते च लभ्यते, वत्सपुच्छ-खरचर्मखण्डनम्।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २४

मनुष्य यदि सिंह की गुफा मे जाता है तो वहाँ गजकुम्भस्थल के मोती मिलते हैं और यदि सियाल (गीदड) के स्थान पर जाता है तो बछडे के पूंछ व गदहे के चाम का टुकडा मिलता है।

८. यादृशै सनिवसते, यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं, तादृग् भवति पूरुष॥

—विदुरनीति ४।१३

मनुष्य जैसो के पास बैठता है, जैसो की सेवा करता है और जैसा खुद बनना चाहता है—वैसा ही बन जाता है।

९. *A man is Known by the Company he keeps*

—अंग्रेजी कहावत

ए मेन इज नोन बाई दी कम्पनी ही कीप्स।
संगति के अनुसार मनुष्य पहचाना जाता है।

१० जैसी संगति बैठिए, तैसी इज्जत पाय।
सिर पर मखमल सेहरे, पनही मखमल पाय॥

११ संगति से गुण होत हैं, बुधजन करत बखान।
गांधी और कलाल की, देखो बैठ दुकान॥

१२. कदली-सीप-भुजगमुख, एक स्वाति गुण तीन।
जैसी संगति पाइये, तैसो ही गुण दीन्ह॥

—रहीम

१३. एक युवक ससुर, पिता व मित्र के साथ चलता है। तीनों समय का व्यवहार भिन्न-भिन्न रहेगा।

१४. मनुष्य कृपण या दानी जैसे भी व्यक्ति के साथ रहेगा, उस पर उसका प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा।

१५. भेड़ों के साथ रहनेवाला जंगली मनुष्य, भेड़ों की तरह पानी पीने लगा।

● एक बालक (जो लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में था।) हिंसक पशुओं में १२ वर्ष रहने से खान-पान एवं गमन उन्हींकी तरह करने लग गया।

१६ तीन देश के व्यक्ति यदि साथ रहें तो उनके रहन-सहन, खान-पान एवं भाषा आदि मिश्रित होकर एक नयारूप ले लेते हैं। जैसे—पीपरमेंट पोदीना-कपूर से अमृतधारा बन जाती है।

१७. संगति न करने योग्य व्यक्ति—

(क) यस्य न ज्ञायते वीर्यं, न कुलं न विचेष्टितम्।
न तेन संगतिं कुर्या-दित्युवाच बृहस्पतिः॥

—पञ्चतन्त्र ४।२०

जिसका बल, कुल, चेष्टायें ज्ञात न हो, उसकी संगति मत करो। (ऐसा बृहस्पति ने कहा है।)

(ख) लोकयात्रा भय लज्जा, दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पंच यत्र न विद्यन्ते, न कुर्य्यात् तत्र संगतिम् ॥

—चाणक्यनीति १।१०

आजीविका, भय, लज्जा, चतुराई और देने की भावना—ये पाच बातें जहां न हो, वहां सम्पर्क नही रखना चाहिए।



१. अक्षोभ्यतैव महता, महत्त्वस्य हि लक्षणम् ।

—कथासरित्सागर

प्रतिकूल परिस्थिति में क्षुब्ध न होना, महापुरुषों की महत्ता का लक्षण है ।

२. निर्दम्भता सदाचारे, स्वभावो हि महात्मनाम् ।

महापुरुषों का यह स्वभाव है कि वे अपने सदाचरणों पर बनावटीपन नहीं आने देते ।

३. विवेक सह सपत्त्या, विनयो विद्यया सह ।
प्रभुत्व प्रश्रयोपेतं, चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

संपत्ति के साथ विवेक का होना, विद्या के साथ विनय का होना और प्रभुत्व के साथ प्रश्रय-विनय का होना—ये महात्माओं के लक्षण हैं ।

४. विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६३

विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में सहिष्णुता, सभा में वचन की चतुराई, संग्राम में पराक्रम, सुयश में रुचि, शास्त्रपठन में व्यसन—ये बातें महात्माओं में स्वाभाविक होती है ।

५. करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गरुपाद-प्रणमनं,
मुखेसत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छावृत्ति श्रुतमधिगतैकव्रतफल,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहृता मण्डनमिदम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६५

हाथो मे सुपात्रदान, मस्तक पर गुरुजनो के चरणो का अभिवादन, मुख मे सत्यवचन, विजयी भुजाओ मे अतुल पराक्रम, हृदय मे स्वच्छ भावना और कानो मे शास्त्रो का श्रवण । जो प्रकृति से महापुरुष होते हैं, उनके ये सब गुण बिना ऐश्वर्य के आभूषण हैं ।

६. पाषाणरेखेव प्रतिपन्न महात्मनाम् ।

महात्माओं द्वारा लिया हुआ प्रण पत्थर की रेखा की तरह अमिट होता है ।

७. न कालमतिवर्तन्ते, महान्त स्वेषुकर्मषु ।

—योगवाशिष्ठ ५।१०।६

महापुरुष अपने कार्यों मे कालातिक्रम नही होने देते अर्थात् समय के पाबन्द होते हैं ।

८. मनस्वी म्रियते कामं, कार्पण्य न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति, नानलो याति शीतताम् ॥

—हितोपदेश १।१३३

महापुरुष मर जाते हैं, किन्तु कृपणता कभी नही करते । आग बुझ जाती है परन्तु शीतल कभी नही होती ।

६ संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता ।
उदये सविता रक्तो, रक्तोऽस्तममये तथा ॥

—पञ्चतन्त्र २।७

महापुरुष सपत्ति और विपत्ति मे एकरूप रहते है। देखो! सूर्य उदय होने के समय भी लाल रहता है और अस्त होने के समय भी लाल रहता है।

१०. अहो किमपि चित्राणि, विचित्राणि महात्मनाम्।
लक्ष्मी तृणाय मन्यन्ते, तद्भारेण नमन्त्यपि॥

—देवेश्वर

महापुरुषो के चित्र कुछ विचित्र ही होते है। वे लक्ष्मी को तृण के समान समझते हैं, पर लक्ष्मी के भार से नम भी जाते हैं।

११ हिताय नाहिताय स्याद्, महान् सतापितोऽपि हि।
पश्य! रोगापहाराय, भवेदुष्णीकृत पय:॥

महान्पुरुष सतापित होकर भी हितकारी ही होता है, अहितकारी नही होता। देखो! अग्नि मे गर्म कर लेने पर भी दूध रोगनाशक होता है।

१२ दुर्जनवचनाङ्गारै-र्दग्धोऽपि न विप्रिय वदत्यार्य।
नहि दह्यमानोऽप्यगुरु, स्वभावगन्ध परित्यजति॥

—प्रसङ्गरत्नावली

दुष्टो के वचनरूप अंगारो से जला हुआ भी आर्यपुरुष कभी अप्रिय नही बोलता। जैसे—जलता हुआ भी अगर-धूप अपनी सुगन्धि नहीं छोड़ता।

१३ सपत्सु महता चित्त, भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैल-शिला-सघातकर्कशम्॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६६

सपत्ति के समय महात्माओं का चित्त कमलवत् कोमल रहता है और आपत्ति के समय महान् पर्वत की शिलाओं के समूहवत् कठोर हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सपत्ति में वे अभिमान नही करते और आपत्ति मे घबराते नही।

१४. गवादीनां पयोऽन्येद्यु, सद्योवा जायते दधि ।
क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि, महतां विकृतिः कुत ॥

—देवेश्वर

गाय आदि का दूध दूसरे ही दिन दही बन जाता है, किन्तु क्षीर-समुद्र का जल आज तक दही नही बन सका, क्योकि बडो मे विकार नही आता ।

१५. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिण ।

—शिशुपालवध २।१३

महानुपुरुष स्वभाव से ही मितभाषी (कम बोलनेवाले) होते हैं ।

१६. महापुमांसो गर्भस्था, अपि लोकोपकारिण. ।

—त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित्र २।२

महापुरुष गर्भ में होते हुए भी लोकोपकारी होते हैं ।

१७. बडे सनेह लघुन पर करही, गिर निज सिरन सदा तृन धरही ।
निजगुन श्रवन सुनत सकुचाही, परगुन सुनत अधिक हरषाही ॥

—रामचरितमानस

१८. दोषाकरोपि, कुटिलोपि कलङ्कितोपि,
मित्रावसानसमये विहितोदयोपि ।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
न ह्याश्रितेषु महतां गुण-दोषचिन्ता ॥

—चन्दचरित्र, पृष्ठ ७५

चन्द्रमा दोषा-रात्रि का करनेवाला है, कुटिल है, कलङ्कसहित है, मित्र-सूर्य के अस्त होने पर उदय होनेवाला है। फिर भी महादेव को प्रिय लगता है, क्योंकि महापुरुष आश्रितो के गुण-दोषो का विचार नही करते ।



२१ महापुरुषों का पराक्रम

१. विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि—
विपक्षो लङ्केशो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद् राक्षसकुलं,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

लंका पर विजय पानी थी, समुद्र पैरों से तैरना था, रावण जैसा दुश्मन था, रणभूमि के सहायक केवल वानर थे। इतने पर भी अकेले राम ने राक्षसकुल को नष्ट कर दिया। क्योंकि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं।

२. रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः,
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
व्रजत्यन्तं सूर्यः प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

रथ के पहिया एक है, घोड़े सात हैं, जिनके पैरों में साँप लिपटे हुए हैं, मार्ग निरालम्ब आकाश है एवं सारथी पागला है। इतने पर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार कर देता है। कारण यही है कि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं।

३. अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं, नहि गोमायु-रुतानि केसरी।

—शिशुपालवध

सिंह मेघ के पीछे गर्जा करता है, किन्तु गीदड के पीछे नही। ऐसे ही बडे आदमी छोटो के साथ नही उलझते।

४. तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो, मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून् प्रबाधते, महान् महत्येव करोति विक्रमम्॥
—हितोपदेश २।८८

नीचे की ओर झुके हुए कोमल तृणो को वायु नही उखाडती, वह तो उच्छृखलता से खडे हुए वृक्षो का ही उन्मूलन करती है, क्योकि बडा—बडे के सामने ही अपना पराक्रम दिखाता है।

५. ग्राम्यशूकर ने सिंह से कहा—मेरे साथ युद्ध कर, अन्यथा मैं सबसे कह दूंगा कि मैंने सिंह को जीत लिया। सिंह ने उत्तर दिया—

गच्छ शूकर! भद्रं ते, वद सिंहो जितो मया।
पण्डिता एव जानन्ति, सिंह-शूकरयोर्वलम्॥
—दृष्टान्तशतक

शूकर! तेरा कल्याण हो। जा, सबसे ही कहदे कि मैंने सिंह को जीत लिया। विद्वान्, सिंह और सूअर के बल को जानते है।

६. सूर-मिल्टन अंधे थे, कर्ण-ईसा मे वश की कमी थी, अष्टावक्र, चाणक्य, सुकरात व बर्नार्डशा मे रूप की कमी थी, नेपोलियन और हिटलर मे धन एवं प्रतिष्ठा की कमी थी, किन्तु इन महापुरुषो ने कभी अपने मे कमी महसूस नही की।



२२ महान्पुरुषों के विषय में विविध

१. कुछ व्यक्ति जन्मजात महान् है, कुछ महानता प्राप्त करते हैं और कुछ पर महानता लाद दी जाती है ।

—शेक्सपियर

२. ऐसा कोई वास्तव में महान् व्यक्ति नही हुआ, जो वास्तव में सदाचारी न रहा हो ।

—फ्रैंकलिन

३. संसार के इतिहास में कभी भी काफी सुलझे हुए आदमी सभी जगह नही हुए ।

—विजम

४. न खलु परमाणोरल्पत्वेन महान् मेरु किन्तु स्वगुणेन ।

—नीतिवाक्यामृत २२।१६

मेरु पर्वत अपने गुण से महान् है, परमाणु के छोटापन से नहीं ।

५. कोई भी व्यक्ति अनुकरण-मात्र से आज तक महान् नहीं हुआ ।

—सेमुएल जॉनसन

६ पानी जैसा चंचल व्यक्ति, कभी महान् नहीं होता ।

—बर्क

७ निकट जाने से पता लगता है कि महान्पुरुष केवल मानव ही है अतएव निकटवर्ती व्यक्तियों को वे कभी महान् प्रतीत नहीं होते ।

—साब्रेयर

८. महान् व्यक्ति हमें महान् इसलिए लगते हैं कि हम घुटनों पर टिके हुए हैं।

—स्टर्नर

९. परिमाण किसी भी व्यक्ति एव राष्ट्र की महानता की निकृष्टतम कसोटी है।

—जवाहरलाल नेहरू

१०. महान् दोषों से संपन्न होना भी महान्पुरुषों का ही अधिकार है।

—रोशफूको

११. विश्व को महान्पुरुषों की आवश्यकता है, किन्तु उनके पुजारियों एव खुशामदियों की नहीं।

—वीरजी

१२. महान्पुरुष वही है, जो कहने से पहले करके दिखाता है।

—कन्फ्यूसियस

१३. मनुष्य को तुच्छ (छोटी) बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, यदि वह उन्हीं में फसा रहेगा तो बड़े काम कब करेगा एवं महान् कब बनेगा।

—कन्फ्यूसियस

१४. किसी महापुरुष को तब तक महान् नहीं समझना चाहिये, जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो जाती।

१५. स्वामी रामतीर्थ (जब कालेज में प्रोफेसर थे) ने काले पट्टे (ब्लैक बोर्ड) पर लकीर खींच कर कहा—इसे छोटी बनाओ। तब एक लड़का उसे मिटाने लगा, स्वामी जी ने कहा—मिटाओ मत। सभी छात्र स्तब्ध थे। इतने में एक बुद्धिमान छात्र ने उस लकीर के नीचे बड़ी लकीर खींच दी तब वह छोटी बन गई। तत्त्व यह है कि दूसरों को मिटाओ मत, अपने गुणों को बढ़ाकर महान् बनो।

१६. गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधरा. ।

पंकनिमग्न हाथियो का उद्धार हाथी ही कर सकते हैं, इसी प्रकार महापुरुषो की सहायता महापुरुष ही कर सकते हैं।

१७. महानता के विघातक दोष—

आलस्यं स्त्री-सेवा, सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् !
सन्तोषो भीरुत्व, षड् व्याघाता महत्त्वस्य ॥

—हितोपदेश १।५

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्मभूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छह दोष महानता का नाश करनेवाले हैं।



महापुरुषों का सम्पर्क

१. महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

—भक्तिसूत्र ३९

महात्माओ का सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है ।

२. महाजनस्य संसर्गः, कस्य नोन्नतिकारकः ?
पद्मपत्रस्थित वारि, धत्ते मारकतिं द्युतिम् ।

—पञ्चतन्त्र ३।५१

महापुरुषो का ससर्ग किसे उन्नत नही करता ? देखो कमलपत्र पर ठहरा हुआ जलविन्दु मरकतमणिवत् चमकने लगता है ।

३. कीटोऽपि सुमन संगा–दारोहति सता शिरः ।
अश्मापि याति देवत्व, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४५

कीडा भी फूलो की संगति से सज्जनो के सिर पर पहुंच जाता है तथा महापुरुषो द्वारा स्थापित किया हुआ पत्थर भी देवता कहलाने लगता है ।

४. काचः काञ्चनससर्गाद्, धत्ते मारकती द्युतिम् ।

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४१

सोने के ससर्ग से कांच भी मरकतमणिवत् प्रभा धारण करने लगता है ।

५. मलयाचल गन्धेन, त्विन्धन चन्दनायते ।

मलयाचल पर रहे हुए चन्दन की सुगन्धि से साधारण वृक्ष भी चन्दन बन जाते है ।

६. रथ्याम्बु जाह्नवी सगात्, त्रिदशैरपि पूज्यते।

—प्रसंगरत्नावली

गलियों का गंदा पानी भी गंगा में मिलने से गंगाजल कहलाकर देवों द्वारा वन्दनीय बन जाता है।

७. स्वर्णीस्याताम् सिद्धरसे, शीसक-त्रपुणी अपि।

—त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र २।३

रस के संयोग से शीशा और त्रपु भी सोना बन जाते हैं।



बड़ा आदमी और बड़प्पन

१ He who humbles shall be exalted

—अंग्रेजी कहावत

हि हू हम्बल्स शैल वि एग्जाल्टैड।

बड़ा बनना हो तो छोटा बनो।

२. गांधीजी थर्डक्लास मे मुसाफिरी कर रहे थे। किसी के पूछने पर बोले—"भारत की जनता गरीब है और मैं जनता का सेवक हूँ। फोर्थ क्लास तो है नही, अन्यथा उसी मे बैठता।"

३. प्रभुता मेरुसमान, आप रहै रजकण जिसा।
तिके पुरुष धन जाण, रविमण्डल में राजिया।

—सोरठा संग्रह

४. हाथी हीडत देख, खर कूकर लव-लव करै।
वड़पण तणो विवेक, क्रोध न आणै किसनिया।

—सोरठा संग्रह

५ छोटे आदमियो से सद्व्यवहार करके बडे आदमी अपना बड़प्पन प्रकट करते है। —कार्लाइल

६. तीन बड़प्पन पाते हैं—(१) दूसरो को थोड़ा भगाना देकर अधिक काम करनेवाले (२) काम कर देने के बाद अहकार न करनेवाले (३) दूसरे को सफल होते देखकर रंज न करनेवाले।

७. बाताम्यू बड़ा को हुवैनो।

—राजस्थानी कहावत

८ पहले थे हम मर्द, पीछे नारी कहाये।
कर गंगा मे स्नान, पाप सब धोय गमाये।।
कर शिल्ला से युद्ध, घाव बरछिन के खाये।
उछल पडे अग्निकुड मे, तब हम बडे कहाये।।

—भाषाश्लोकसागर

६. मुमेर की बैठक मे दो डोरा हुवै।
● बडा लाज री खातर मरै।

—राजस्थानी कहावतें

१०. High winds blow on high hills

—अंग्रेजी कहावतें

हाई विंड्स ब्लो ओन हाई हिल्स।
बडो की बडी बात।

११. बडी रात रा बडा तडका।
● बडा रा बडा काम।
● मोटां री पंसेरी ही भारी।
● बडा कहै ज्यूं करणो, करै ज्यूं नही करणो।
● मोटा री बात करै सो बिना मौत मरे।
● मोटारै मांयने बडनो सोहरो, पण निकलणो दोहरो।
● बडा रै कान हुवै, आंख्या को हुवैनी।
● राम जठै अयोध्या,
● राणाजी परणै जठै उदयपुर।

—राजस्थानी कहावतें



उत्तमपुरुष

१. गुणैरुत्तमता यान्ति, नोच्चैरासनसस्थिता ।
प्रासादशिखरारूढ, काक: किं गरुडायते ॥

—चाणक्यनीति १६।६

ऊंचे आसन पर बैठने-मात्र से मनुष्य उत्तम नही बन जाता, गुणो से बढता है। क्या महल के शिखर पर बैठने से काग गरुड बन जाता है? कभी नही।

२. सर्वोत्तम मनुष्य वे ही हैं, जो अवसरो की बाट न देखकर उनको अपने दास बना लेते हैं।

—ई. एच चेपिन

३. भणेल करता गणेल सरस, गणेल करता फरेल सरस अने फरेल करता कपायेल सरस।

—गुजराती कहावत

४. जलेर् मध्ये गगाजल, फलेर् मध्ये आम।
नारीर् मध्ये सीता सती, पुरुषेर् मध्ये राम ॥

—बगला कहावत

५. झाडी-वंको झाबुवो, रणवंको कुशलेश।
नारी-वंकी पुगल तणी, नर बंको मरुधर देश ॥

६. उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा—१. धम्मपुरिसा—अरिहंता, २ भोगपुरिसा—चक्कवट्टी, ३ कम्मपुरिसा–वासुदेवा।

—स्थानांग ३।१।१२८

उत्तम पुरुष तीन प्रकार होते हैं—(१) धर्मपुरुष (२) भोगपुरुष (३) कर्मपुरुष। धर्मपुरुष—तीर्थंकर, भोगपुरुष—चक्रवर्ती और कर्मपुरुष—वासुदेव माने जाते है।

उत्तमपुरुषों का स्वभाव

१. दग्ध-दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
घृष्ट-घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम्।
छिन्नं-छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुं चेक्षुखण्डं,
प्राणान्तेऽपि प्रकृति-विकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

बार-बार जलाने पर सोना अधिक चमकीला बनता है, बार-बार घिसने पर चन्दन अधिक सुगन्ध फैलाता है। बार-बार काटने पर इक्षुखण्ड अधिक मीठा स्वाद देता है—तत्त्व यह है कि प्राणान्त कष्ट में भी उत्तम-पुरुषों की प्रकृति में विकार नहीं आता।

२ गव्हा चा आटा आणी कुणब्या चा वेटा।

—मराठी कहावत

सताने पर भी उत्तम-उत्तम ही फल देता है।

३ आपन्नार्ति-प्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।

—मेघदूत १।५३

उत्तमपुरुषों की संपत्तियाँ, दुःखितों के दुःखों को शान्त करने के लिए ही होती हैं।

४ त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि, प्राणानपि न सत्पथम्।

—कथासरित्सागर

उत्तमपुरुष प्राणों का त्याग कर देते हैं, लेकिन सन्मार्ग का नहीं।

५. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥

—भर्तृहरि नीतिशतक २७

नीच-मनुष्य विघ्नो के होने के भय से काम का आरम्भ ही नही करते। मध्यम-मनुष्य काम का आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीच में छोड देते हैं। परन्तु उत्तमपुरुष जिस काम का आरम्भ कर देते हैं, उसे बार-बार विघ्न आने पर भी पूरा करके ही छोडते हैं।

६. केषा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥

—मेघदूत

उत्तमपुरुषो की संपत्तियाँ, दु खितो के दु खो को शान्त करने के लिए ही होती है।

७. शास्त्र बोधाय दानाय, धन धर्माय जीवितम्।
वपु परोपकराय, धारयन्ति मनीषिणः॥

—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ ७०

उत्तमपुरुष शास्त्रपठन ज्ञान के लिए, धन दान के लिये, जीवन धर्म के लिए और शरीर परोपकार के लिए धारण करते हैं।



अधम (नीच) पुरुष

१. परवादे दशवदन, पररन्ध्रनिरीक्षणे सहस्राक्षः।
सद्वृत्तवित्तहरणे, बाहुसहस्राऽर्जुनो नीचः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

नीच व्यक्ति परनिन्दा करने के लिए दशवदन (दश मुंहवाला-रावण) है, पर-छिद्र देखने के लिए सहस्राक्ष (हजार नेत्रोंवाला-इन्द्र), और दूसरों का सदाचाररूपी धन हरने के लिए सहस्रबाहु (हजार भुजाओं-वाला अर्जुन) है।

२. यस्मिन् देशे समुत्पन्न—स्तमेव निजचेष्टितैः।
दूषयत्यचिरेणैव, घुणकीट इवाधमः ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ ५६

घुण (कीट) जिस लकड़ी में पैदा होता है, उसी को खराब करता है। ऐसे ही नीच व्यक्ति दुराचरणों द्वारा अपने ही वंश को दूषित करता है।

३. चणका इव नीचा, नोदरस्थापिता अपि नाविकुर्वाणास्तिष्ठन्ति।

—नीतिवाक्यामृत २७।२०

नीच मनुष्य चनों के समान हैं, जो पेट में डालने पर भी आवाज किए बिना नहीं टिकते।

४. बहुत किये हू नीच को, नीच सुभाव न जात।
छाड़ि ताल जलकुम्भ में कौआ चोंच भरात ॥

—वृंदकवि

५. नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य, स्वामिनं हन्तुमिच्छति ।
मूषिको व्याघ्रतां प्राप्य, मुनिं हन्तुं गतो यथा ॥

—हितोपदेश

नीच अच्छे पद को पाकर अपने स्वामी को ही मारना चाहता है। जैसे—चूहा बाघ बनकर मुनि को मारने चला।

● एक योगी की झोपड़ी में चूहा फिर रहा था। उसे पकड़ने बिल्ली दौड़ी। योगी को दया आई और मंत्रशक्ति से चूहे को बिलाव बना दिया। बिल्ली तो भाग गई, लेकिन उस पर कुत्ता दौड़ा। योगी ने बिलाव को बाघ का रूप दे दिया। उसे भूख लगी और कृतघ्न योगी को ही खाने के लिए तैयार हुआ। योगी ने कहा—'पुनर्मूषको भव' वह बाघ तत्काल चूहा बन गया और बिल्ली आकर उसे खा गई।

६. कुजात मनायां वांथां पड़े।
सुजात मनायां, पगां पड़े॥

● हाथी रा दांत, कुत्ते री पूंछ और कुमाणस री जीभ सदा आंटी ही रेवै।

—राजस्थानी कहावत

७. वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।

मर जाना भला, पर नीच का सङ्ग अच्छा नहीं।

८. नीच चंग सम जानिबो, सुनि लखि "तुलसीदास"।
ढील देत महि गिर परत, खेंचत चढ़त अकास॥



२८ शारीरिकदोष पर आधारित अधमता

१ सौ नीच र एक आंख मीच।

—राजस्थानी कहावत

२ सौ मे फूल सहँस मे काणो, लाखां माहो ईंचाताणो।
ईंचाताणै करी पुकार, मुझसे अधिको है मजार॥

३ खाटरा खटदोषेण, अष्टदोषेण मजरा।
वाडा बहत्तर दोषेण, काणे संख्या न विद्यते॥

४ काणियो, वाणियो ने स्वामीनाराणियो।

—गुजराती कहावत

५. भस्माङ्गुलिर्बकोड्डायी, बालशौची तथा ह्रिही।
धारावर्ती चक्रवर्ती षडेते पुरुषाधमाः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३८०

स्त्री की गुलामी करनेवाले पुरुषों की अपेक्षा से छः प्रकार के अधम-पुरुष कहे हैं—

(१) भस्माङ्गुली—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन चूल्हा जलानेवाला।

(२) बकोड्डायी—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार पानी भरने के लिए तालाब पर जानेवाला एवं वहाँ बगुलों को उड़ानेवाला।

(३) बालशौची—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन बालकों की टट्टी उठानेवाला।

(४) ह्रीह्री—स्त्री की हर बात पर ही-ही करके दाँत दिखानेवाला।

(५) धारावर्ती—स्त्री के बताए हुए कामों को पूरी तरह से पालनेवाला।

(६) चक्रवर्ती—स्त्री के कुचक्र में बुरी तरह से फँसा रहनेवाला।

२९ धीरपुरुष

१ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः ।

—कुमारसम्भव १।५९

विकार उत्पन्न होनेवाली वस्तु पास होने पर भी जिनका मन विकृत नही होता, वास्तव मे वे ही धीर पुरुष हैं ।

२. चलन्ति गिरयः कामं, युगान्तपवनाहताः ।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणां निश्चलं मनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८१

प्रलयकाल के पवन से चलकर पर्वत भले ही अपने स्थान से हट जाएँ परन्तु धीरपुरुषो का निश्चल मन घोर कष्टो मे भी विचलित नही होता ।

३. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक-८४

नीतिनिपुण चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें । लक्ष्मी चाहे आए चाहे जाए तथा चाहे आज ही मरना पड़े, चाहे युगान्तर मे, लेकिन धीरपुरुष न्यायमार्ग से एक कदम भी पीछे नही हटते ।

४. काच कथीर अधीर नर, कस्या न उपजै प्रेम ।
कसणी तो धीरा सहै, कै हीरा कै हेम ॥

५. क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।

क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥

—भर्तृहरिनीतिशतक ८२

कभी भूमि पर शयन होता है और कभी पलङ्गों पर, कभी केवल शाक का आहार प्राप्त होता है और कभी स्वादिष्ट शाल्योदन, कभी गुदड़ी ओढ़ कर समय बिताना होता है और कभी दिव्यवस्त्र पहनकर। वास्तव में कार्यार्थी मनस्वी (धीर-पुरुष) सुख-दुःख की परवाह न करके समभाव रहता है।

६. तं तु न विज्जइ कज्जं, जं धिइमंतो न साहेइ?

—बृहत्कल्पभाष्य, १३५७

वह कौन-सा कठिन कार्य है, जिसे धैर्यवान् व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता।

७. अगणवेदी वसुधा, कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः, कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य॥

—अभिज्ञानशाकुन्तल

अपनी प्रतिज्ञा पालने में दृढ़ धीरपुरुष के लिए पृथ्वी आंगन की वेदी के समान, समुद्र एक नाली के समान, पाताल समतल भूमि के समान और मेरु पर्वत वल्मीक [illegible] के समान हो जाता है, अर्थात् कठिन से कठिन काम भी उसके लिए सरल हो जाता है।

८. दरिद्रता धीरतया विराजते।

—चाणक्यनीति, ६।१४

धीरता से दरिद्रता भी चमक जाती है।

९. धिती नु मोहस्स उवसमे होति।

—निशीथभाष्य ८५

मोह का उपशम होने पर ही धृति (धीरता) होती है।



धैर्य

१. धैर्य के नेत्रों से देखने पर महान् से महान् संकट भी धूम्र के बादलवत् क्षणभर में अदृश्य हो जाता है।

—वीरजी

२. धैर्यं न त्याज्यं विधुरेऽपि काले।
विपत्ति के समय भी धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिये।

३ धन ! धीरज नहीं भूलिये, देख दुखों की चोट।
सागर में आती रही, सदा से भरती-ओट।

—दोहा-सदोह

४. न स्वधैर्यादृते कश्चिदभ्युद्धरति संकटात्।

—योगवाशिष्ठ ५।२६।१०

अपने धैर्य के बिना और कोई भी मनुष्य का संकट से उद्धार नहीं कर सकता।

५ धैर्य जिसके पास है, वह जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

—फ्रेंकलिन

६ वे कितने निर्धन हैं, जिनके पास धैर्य नहीं है। क्या आज तक कोई जख्म धैर्य के बिना ठीक हुआ है?

—शेक्सपियर

७. शनैः कन्था शनैः पन्था, शनैः पर्वतलङ्घनम्।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं, पञ्चैतानि शनैः शनैः।

—प्रसन्नरत्नावली

(१) कथा—पुराने वस्त्र को पहनना (२) रास्ता काटना (३) पर्वत लांघना (४) विद्या पढ़ना (५) धन पैदा करना—ये पांच काम धीरे-धीरे करने चाहिएँ ।

8, Little starcks failgrate Aucts,
लिटल स्टार्क्स फेल ग्रेट ऑक्स ।

—अंग्रेजी कहावत

● धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आया फल होय ।

—कबीर-साखी

9. Rome was not built in a day.
रोम वाज नॉट बिल्ट इन ए डे ।

—अंग्रेजी कहावत

हथेली पर दही नहीं जमता ।

१० न हो जल्दबाजी से मकसद हसूल ।
जो फल चाहता है तो मत तोड़ फूल ॥

—उर्दू शेर

११. गह रहीम निज संग ले, नहिं जन्मत है कोय ।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत-होत ही होय ।

१२ धीरजना फल मीठा छे. सबूरी नो बदलो साहेब आपे ।
● तेल जुओ तेल नी धार जुओ ।

—गुजराती कहावतें

१३. तेल देखो तिला री धार देखो ।
● एक नै नहीं दोनूं आख्यां नै देखणो ।
● ऊंट नै उठता ही लाग नहीं घालणो ।
● ऊना मेहणो बेग धोरा ही करै । (पहले पाटना होगा)

- आगली पकड र पुहुचो पकड़णो।
- गाडी कनै बलद आया रहसी।
- नाई-नाई ! केश कित्ता ?
  जजमान ! मुंह आगे आवै है।

—राजस्थानी कहावतें

१४ विलम्ब न करने के काम—

धर्मारम्भे ऋणच्छेदे, कन्यादाने धनागमे।
शत्रुघाते ऽग्निरोगे च, कालक्षेप न कारयेत् ॥

धर्म का प्रारम्भ, ऋणच्छेदन, कन्यादान, धनग्रहण, शत्रुविनाश, अग्नि-शमन और रोगशमन—इन कामों में कालक्षेप-विलम्ब नहीं करना चाहिये।



उतावल

१. सहसा विदधीत न क्रिया-मविवेक: परमापदापदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिण, गुणलुब्धा स्वयमेव संपद: ॥

—किरातार्जुनीय

किसी काम को उतावल मे (बिना विचारे) न करे । अविवेक आपत्तियों का महान कारण है । विचारपूर्वक धैर्य से काम करनेवाले को उसके गुणो मे लुब्ध होकर सपत्तियाँ स्वयमेव सेवन करती है ।

२. हडबड मे जो भी करो, बिगड जायगा काम ।
सीता को बनवास दे, पछताए श्रीराम ।

—दोहा-सदोह

3, Haste is the mother of waste.
हेस्ट इज दी मदर आफ वेस्ट ।

—अङ्गरेजी कहावत

शीघ्रता बुराई की जननी है ।

४ उचितमनुचित वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिणतिरवधार्या यत्नत पण्डितेन ।
अतिरभसकृताना कर्मणामाविपत्ते—
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाक: ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक १००

पण्डितपुरुष को उचित या अनुचित कोई भी काम करने से पहले उसका परिणाम देख लेना चाहिये । अति उतावल मे किये गये कार्यों का फल शल्यवत् हृदय को जलानेवाला एव विपत्ति के लिए होता है ।

५. सहसा करि पाछे पछताही।
कहहि वेद बुध ते बुध नाही॥

—रामचरितमानस अयोध्या कांड २३०-४

६ शल्य-वह्नि-विषादीना, सुकरैव प्रतिक्रिया।
सहसा कृतकार्योत्था-ऽनुतापस्य तु नौषधम्॥

—चन्दचरित्र पृष्ठ ४६

शल्य, अग्नि एव विष आदि का इलाज होना सुकर है, किन्तु उतावल मे किए हुए कार्य के पश्चात्ताप की कोई औषधि नही है।

७. उत्तापकत्व हि सर्वकार्येषु सिद्धीना प्रथमोऽन्तराय·

—नीतिवाक्यामृत ६।५४

व्याकुलता-हडबडाहट सब कार्यो की सिद्धियो मे पहला विघ्न है।

८. उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा।

—राजस्थानी कहावतें

९. पगथिये-पगथिये चढाय, बहुमूल्या बे हाथे खवाय नहि।
उतावले आंबा पाके नहि। उतावला मा कानु कपाय।
अथरो माणस अथडाइपडे। —गुजराती कहावत

१०. उतावला री (आगे भीचकर युद्ध मे मरनेवालो की) देवल्या हुवै
न धीरा रा गाम वसै।

—गुजराती कहावत

११ सामे पाणी पैनवो, तामस मे अरदास।
चढे ताव औपधि करे, तीनो होत विनाश॥

१२. ऊट तो कूद्यो ही कोनी, पलाण पहली ही कूदग्यो।

—राजस्थानी कहावत

● बैल न कूदा, कूदी गौन।

—हिन्दी कहावत

१३. तूँ आयो तू चाल।

—राजस्थानी कहावत



तेजस्वी-पुरुष

१. होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

—हिन्दी कहावत

२. तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते।

—रघुवंश

तेजस्वियों की उम्र नहीं देखी जाती।

३ सिंहः शिशुरपि निपतति, मदमलिन-कपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां, न खलु वयस्तेजसो हेतुः।

—भर्तृहरि नीतिशतक ३८

शेर बच्चा होने पर भी मदमलिन कुम्भस्थलवाले हाथियों पर जा गिरता है, क्योंकि तेजस्वियों का यह स्वभाव ही है, अवस्था तेज का कोई कारण नहीं।

४ बालस्यापि रवेः पादाः, पतन्त्युपरि भूभृताम्।
तेजसा सह जातानां, वयः कुत्रोपयुज्यते॥

—पञ्चतन्त्र १।३२७

बालक अर्थात् नवउदित सूर्य की किरणें भी पर्वतों के मस्तक पर गिरती हैं। तेजस्वियों के लिए यौवन की बात खास बात नहीं है।

५ प्रसिद्ध नाटककार श्री हरीन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपना प्रसिद्ध नाटक अबुहसन १४ वर्ष की आयु में लिखा था। संत ज्ञानेश्वर ने १५ वर्ष की आयु में भगवद्गीता पर मराठीभाषा में ज्ञानेश्वरी टीका लिखी थी। भारत विख्यात शंकराचार्य ने १६ वर्ष की आयु में १,१००

शूरवीर पुरुष

१. चत्तारि सूरा पण्णत्ता, तं जहा—
खंतिसूरे, तवसूरे, दाणसूरे जुद्धसूरे।
खंतिसूरा अरिहंता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्ध-
सूरे वासुदेवे।

—स्थानांग ४।३।३१७

चार प्रकार के शूर (वीर) कहे हैं—

तद्यथा—(१) क्षमाशूर, (२) तपःशूर, (३) दानशूर, (४) युद्धशूर।

क्षमाशूर—अरिहंत होते हैं।

तपःशूर—अनगार साधु होते हैं।

दानशूर—वैश्रवण होते हैं।

युद्धशूर—वासुदेव होते हैं।

२. शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा ?
मनोज-बाणैर्व्यथितो न यस्तु।

—शंकर-प्रश्नोत्तरी

वीरों में सबसे बड़ा वीर कौन है ?
वही है, जो काम-बाणों से व्यथित नहीं होता।

३. एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए।

—आचाराङ्ग २।६

वही वीर एवं प्रशंसित है, जो कर्मों से बन्धे हुए जीवों को मुक्त करता है।

४. दया मया हिरदै वसै; दिल का तजै दरद।
मार सकै मारै नही, ताका नाम मरद॥

५. पूरा मर्द वह है, जो देता लेता नही, आधा मर्द वह है, जो लेता है पर देता नही। पर नामर्द वह है, जो लेता है पर देता नही।

६. गर्जन्ति न वृथा शूरा, निर्जला इव तोयदाः।

—वाल्मीकिरामायण ६।६५।३

निर्जल-बादलों की तरह शूरपुरुष वृथा गर्जन नहीं करते।

७ नैव शूरा विकत्थन्ते, दर्शयन्त्येव पौरुषम्।

—भागवत १०।५०।२०

शूरपुरुष आत्मश्लाघा नहीं किया करते। वे तो पराक्रम करके ही दिखलाते हैं।

८ नाभिषेको न संस्कारः, सिंहस्य क्रियते मृगैः।
विक्रमार्जितराज्यस्य, स्वयमेव मृगेन्द्रता।

—हितोपदेश २।१६

मृग न तो राज्याभिषेक करते हैं और न ही कोई राज्यसम्बन्धी संस्कार। सिंह की मृगेन्द्रता उसके अपने पराक्रम से ही अर्जित है।

९. एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २४०

मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ या परिवारहीन हूँ—ऐसे सहयोगों के विचार स्वप्न में भी सिंह के मन में नहीं आते।

१०. एकेनापि हि शूरेण, पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव, परिस्फुरिततेजसा।

—भर्तृहरि-नीतिशतक १०८

जैसे—सूर्य अपनी किरणो से सारे जगत को प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार अकेला ही शूरपुरुष सारी पृथ्वी को पांव तले दबाकर वश मे कर लेता है।

११. कायर मृत्यु से पहले ही मृत्यु का कई वार अनुभव कर लेते है। जबकि वीरपुरुष एक वार से अधिक नही मरते।

—शेक्शपियर

१२ यह ससार कापुरुषो के लिए नही है अत पलायन करने का विचार मत करो!

—विवेकानन्द



३५ कायर

१. कायर तभी धमकी देता है, जब सुरक्षित होता है।

—गेटे

२ कायर लोग जीभ का दुरुपयोग करते हैं, वीरपुरुष नहीं। कुत्ते भौंकते हैं, सिंह नहीं।

३. एक कायर कुत्ता इतनी तीव्रता से नहीं काटता, जितनी तीव्रता से भौंकता है।

४. कातरा एव जल्पन्ति, यद्भाव्य तद् भविष्यति।

—पञ्चतन्त्र २।१३६

कायरमनुष्य ही यह कहा करते हैं कि जो होना है, वही होगा।

५ कायर होने के कारण ही हम दूसरों का खून करने का विचार करते हैं।

—महात्मा गांधी

६. घर चा वाघ व बाहेर ची शेली।

—मराठी कहावत

घर में शूर और बाहर कायर।

● म्याऊ रे मूंढे कुण चढ़े।

—राजस्थानी कहावत

८. घर शूरा मूछ पड़िया, गौर गवांरा गोठ।
सभा माहि बतलावता, थर-थर धूजे होठ॥

—[illegible]

● दोरी पियारी मोरी माय ! भारी विपति पडी है आय ।
अबके फेरे छूटूंगो, तो पड्यो डोवरा कूटूंगो ॥

एक कुम्हार फौज मे भर्ती हुआ। थोडे ही दिनो बाद लडाई मे जाना पडा। ज्यो ही तलवारें चमकने लगी, उपरोक्त दोहा कहता हुआ भाग कर अपने घर आ गया।

१०. कायर राजपूत युद्ध मे गया। पीछे उसकी माता पुत्र की चिन्ता करने लगी, तब बहू ने कहा—

वहुवर पूछे सासूजी ने, क्यू छो आज उदासी ?
म्हारा कतरो मने भरोसो, कुशल-क्षेम घर आसी ॥
राड करंता लारै रहसी, वाता घणी बणासी ।
वागा-बगा नणदरो वीरो, वेगो भाग्यो आसी ॥
बात करतां वेला लागी, अपजश तणे पवाडे ।
डीलारा कपडा खोसावी, आया मूड उघाडे ॥

इस तरह अपने पुत्र को आया देखकर माता ने कहा—

दाद देई नें सासू बोली (तैं) बात आगमरी जाची।
कहती जिमो थारो कत निवडियो, साची है बहू ! साची ॥

—प्राचीनसंग्रह से



३६ शूरता और कायरता

१ नयेनाऽऽकलितं शौर्यं, जयाय न तु केवलम्।
अन्नयुक्तं विषयुतं, पथ्यं स्यादन्यथा मृतिः।

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १५७

न्याय से युक्त शूरता जय करनेवाली है, केवल शूरता नहीं। जैसे—अन्न उदर में मिश्रित विष पथ्य बन जाता है अन्यथा उससे मृत्यु हो जाती है।

२ कातर्यं केवला नीतिः, शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।

—कालिदास

केवल नीति की बात करना कायरता है और केवल (नीतिशून्य) शूरता दिखलाना श्वापद—हिंसक पशु जैसी चेष्टा है।

३ वीर और कायर में एक कदम का अन्तर है—वीर का कदम आगे और कायर का कदम पीछे रहता है।

—अमरमुनि

४. शूर-शिरोमणि-सपूत के जीवन में अनुजात।
कायर-जीवन-दान का, देता नहीं निदान।

५ अत्याचार और भय—कायरता के दो पहलू है।



१. बार पुरुष बलवान, सबल इक वृषभ कहीजे।
दस वृषभ इक महिष, महिष दस तुरी गिणीजे॥
दस तुरी एक गयंद, गयंद शतपंचहि केहर।
केहर मिल दस सहस्र, एक अष्टापद सुन्दर॥
अष्टापद दसलक्ष, एक बलदेव बखाणो।
दो बलदेव सुबोध, सबल नारायण जाणो॥
दो नारायण सबल, मिली चक्रीश थुणीजे।
चक्री मिल दस सहस्र, एक सुरइद गुणीजे॥
एहवा इन्द्र अनन्त, एकठो बल सहु कीजे।
एहवो बल जिनराज, अंगुली चिट्टी न लीजे॥

—भाषाश्लोकसागर

२. हस्ती स्थूलतरः स चाङ्कुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो,
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।
वज्रेणाभिहताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरि—
स्तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः।

—पंचतन्त्र १।२५८

बहुत बड़ा हाथी अंकुश के अधीन है, क्या अंकुश हाथी के बराबर है? छोटा सा दीपक जलने पर अंधेरा नष्ट हो जाता है, क्या अन्धेरा दीपक के बराबर है? वज्र का प्रहार लगने पर पर्वत गिर जाते हैं, क्या पर्वत वज्र के बराबर है? नहीं-नहीं, वास्तव में जिसका तेज-प्रताप अधिक है, वही बलवान है। स्थूल-मोटा होने से क्या है?

३. बलवानपि निस्तेजा कस्य नाभिभवास्पदम् ?
नि शङ्कं दीयते लोकै पश्य भस्मचये पदम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १७०

बलवान होने पर भी निस्तेज व्यक्ति का हर एक पराभव कर देता है। देखो! राख के ढेर होने पर लोग निःसंकोच पैर धरकर चलते हैं, क्योंकि वह निस्तेज है।

४. यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परम खन्ति, निच्च खमति दुब्बलो।
अबल न बल आहु, यस्स बालबलं बलं ॥

—संयुत्तनिकाय १।११।४

जो स्वयं बलवान होकर भी दुर्बल की बातें सहन करता है, उसी को सर्वश्रेष्ठ क्षमा कहते हैं। वह बली निर्बल रह जाता है, जिसका बल मूर्खों का बल है।

५. अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहू,
अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू।

—भगवती १२।२

धर्मनिष्ठ आत्माओं का बलवान होना अच्छा है और धर्महीन आत्माओं का दुर्बल रहना अच्छा है।



३८ अद्भुत बलिष्ठ-व्यक्ति

१. लाक्षागृह से बच निकलने के बाद जब पाण्डव वन में चलते-चलते थक गये, तब भीम ने सवारी बनकर भाइयों एवं माता को जंगल से पार किया था।

—महाभारत, आदिपर्व

२. फ्री-वेन्टनगर (अमेरिका) का पीटर एल० जेकोबस नामक व्यक्ति अपनी हथेलियों पर दो व्यक्तियों को बैठाकर ८० फीट तक चला जाता था।

- भारी वजन उठानेवाले वेट लिफ्टर मैक्स-सिक नामक जर्मन खिलाड़ी के अपने शरीर का वजन १४७ पौंड था, लेकिन वह अपने वजन से ४० पौंड भारी व्यक्ति को १६ बार अपने एक हाथ से सिर से ऊपर तक उठा लेता था। उसके दूसरे हाथ में शराब से लबालब भरा गिलास रहता था, लेकिन क्या मजाल कि शराब की एक बूँद भी छलक जाय!

- बिर्गोविन नगर (फ्रांस) के बैरन विस्टोफि के घोड़े की एक टांग शिकार खेलते समय टूट गई। बैरन साहब ४२० पौंड भारी अपने घोड़े को पीठ पर लादे सवा मील रास्ता तय करके जानवरों के एक डाक्टर के पास जा पहुंचे।

- फाउन्ट रेम्टन द-फार्दोग (फ्रांस) के एक दरबारी, एरनोल्टन द-एस्पिगने को एक दिन भोजन के लिए लकड़ियों की व्यवस्था करने का आदेश मिला तब वह लकड़ियों लादे खच्चर को अपनी पीठ पर उठाए, ८० सीढ़ियां पार कर एरनोल्टन महल में पहुंच गया।

- कर्नल फ्रेडरिक बरनेबी (१८४२-१८८५ ई०) छः फुट ४ इंच ऊँचे और काफी ताकतवर थे। कहते हैं, एक बार जब वे विटमर (इंग्लैंड) में थे, तब उनके दोस्तों ने उनके साथ मजाक किया। उन्होंने दो टट्टुओं को सीढ़ी पर हाँककर उनके कमरे में पहुँचा दिया। सीढ़ी चढ़कर टट्टू ऊपर तो चले गए। लेकिन उतरना एक समस्या हो गई। अन्त में बरनेबी ने उन्हें उठाकर अपनी बगल में दबाया और नीचे उतर गये।
- स्टटगार्टनगर (जर्मनी) में रहनेवाली सर्कस की खिलाड़िन कुमारी हेलिवट इतनी बलवान थी कि जब वह बाजार में घूमने निकलती तो कंधों पर ८ मन भारी एक सिंह को बैठाये रहती थी।
- लॉग शहर (फ्रांस) में रहनेवाले ठगों के एक गिरोह के सरदार, गुस्ताव रेहर्ड में गजब की ताकत थी। एक दिन उनके गिरोह के दो सदस्य आपस में झगड़ पड़े। एक बिलियर्ड-टेबिल पर खड़े वे दोनों छुरा हाथ में लेकर एक दूसरे पर वार कर रहे थे। सरदार ने यह देखा तो झगड़ा शान्त करने के लिए टेबल के नीचे घुसकर उसने दोनों व्यक्तियों सहित टेबल को अपनी पीठ पर उठा लिया और उन्हें लिए लिए २० फीट बाहर चला गया।

—विचित्रा, वर्ष ३, अंक ४, सन् १९७१

३ पर्वत नामक मोती-गुंबज गाय लेने गया था। और बाहर जाते ही अचानक बाघ-बाघनी मिले। दोनों हाथों से दोनों के कान पकड़ कर घेर लिए। फिर गांव में [illegible] आ गए। (२५ मार्च सन् १९५० में छोटे उदयपुर में पान [illegible] दूर गुजरात [illegible] यह घटना घटी थी)।

४. घर से चार [illegible] आई थी। दुकान में पान [illegible] गाली [illegible] उसने नहीं दी। [illegible] और अपना [illegible] पर [illegible] गाली [illegible] बहादुर [illegible] उतार दी।



१. सबे सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय॥

२. वनानि दहतो वह्ने, सखा भवति मारुत।
स एव दीपनाशाय, कृशे कस्यास्ति सौहृदम्॥

—पञ्चतन्त्र ३।५७

जो वायु वन को जलाते समय अग्नि का सहायक होता है, वही दीपक को बुझा देता है, क्योंकि कमजोर के साथ किसी की मित्रता नहीं होती।

३. अश्वं नैव गजं नैव, व्याघ्रं नैव च नैव च।
अजापुत्रं बलिं दद्याद्, देवो दुर्बलघातकः॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १६२

न घोड़ा, न हाथी, न बाघ, बेचारे अजापुत्र—बकरे की बलि दी जाती है। देखो! देव भी दुर्बल का घातक है।

४. सुने रे, मैंने निर्बल के बल राम।
जब लग गजबल अपनो राख्यो, नेक सर्‌यो नहिं काम।
निर्बल हो, बलराम पुकारे! आए आधे नाम॥

—सूरदास

५. कीड़ी ने मूत रो रेलो ही भारी।

—राजस्थानी कहावत

६. मुंगीला मूता चा पूर।

—मराठी कहावत

चींटी को पेशाब ही नदी।

७ क्रोधादिवश जहर खा लेना, कुए में गिरकर, अग्नि में जलकर, पेट में छुरा भोंक कर और ट्रेन आदि के आगे लेटकर आत्महत्या कर लेना निर्बलता है, किन्तु स्कन्दक, गजसुकुमाल, आदिवत् धर्म के लिए मर मिटना सच्ची सबलता है।

८ बैल बैरागी बाकरो, न थी विधवा नार।
इतना तो थाका भला, माता करे बिगाड़॥

९. जिण रस्ते केहर गया, रज लागी चरणाह।
ते तृण ऊभा सूकसी, नहि चरसी हिरणाह॥



१. निवसन्ति पराक्रमाश्रया, न विषादेन समं समृद्धय ।

—किरातार्जुनीय

जहां पराक्रम है, वहां समृद्धियां रहती है, विषाद-सत्त्वहीनता के साथ वे नहीं रहती ।

२. बलं त्रिविधमिति—सहज, कालज, युक्तिकृत च ।

—चरकसंहिता-सूत्रस्थान ११।३६

तीन प्रकार का बल होता है—

(१) सहजबल—जो स्वभाव से ही होता है ।

(२) कालजबल—जो बाल्यादि अवस्थाओं के या शीत-हेमन्तादि ऋतुओं के अनुसार होता है ।

(३) युक्तिकृतबल—व्यायाम व पौष्टिक आहार आदि से होता है ।

३. दसविहे बले पण्णत्ते, तं जहा—
सोइंदियबले जाव फासिंदियबले,
णाणबले, दंसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले ।

—स्थानांग १०।७४०

बल दस प्रकार का कहा है—(१) श्रोत्रेन्द्रियबल, (२) चक्षुरिन्द्रियबल, (३) घ्राणेन्द्रियबल, (४) रसनेन्द्रियबल, (५) स्पर्शनेन्द्रियबल, (६) ज्ञानबल (७) दर्शनबल, (८) चारित्रबल, (९) तपोबल, (१०) वीर्यबल ।

४. नो निन्हवेज्ज वीरियं।

—आचारांग १।५।३

अपनी योग्यशक्ति को कभी छिपाना नहीं चाहिए।

५ बलवृद्धिकरास्त्विमे भावा भवन्ति ।
तद् यथा—बलवत्पुरुषे देशेजन्म, बलवत्पुरुषे काले च,
सुखश्च कालयोग, बीज-क्षेत्र-गुणसम्पच्च, आहारसम्पच्च, शरीर-
सम्पच्च, सात्म्यसम्पच्च, सत्त्वसम्पच्च स्वभावसंसिद्धश्च यौवनं,
कर्म च, संहर्षश्चेति ।

—चरकसंहिता-शारीरस्थान ६।१३

(१) बलवान्पुरुषों के देश (सिंध-पंजाब) में जन्म, (२) बलिष्ठों के कुल में जन्म, (३) बलिष्ठों के काल में जन्म, (४) सुखकारी काल का संयोग, (५) अच्छे बीज, अच्छे क्षेत्र एवं अच्छे गुणों का संयोग, (६) उत्तम आहार का सेवन, (७) शरीर का उत्तम संगठन, (८) उत्तम आहार-विहार का अभ्यास (९) उत्तम गुणों में रमण, (१०) स्वभाव-संसिद्धि, (११) जवानी, (१२) व्यायाम आदि क्रियाएं, (१३) मन की प्रसन्नता। ये १२ बातें बल को बढ़ाने वाली हैं।



दूसरा कोष्ठक

गुण

व्यसनों के प्रति विरोध का ही नाम 'सद्‌गुण' नहीं है, अपितु व्यसनों की ओर प्रवृत्ति का न जाना सद्‌गुण है।

—बर्नार्डशा

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा, न वस्तुषु।

गुण प्रेम में रहते हैं वस्तुओं में नहीं रहते।

यदि सन्ति गुणा पुंसा, विकसन्त्येव ते स्वयम्।
नहि कस्तूरिकामोद, शपथेन विभाव्यते॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

मनुष्यों में यदि गुण हों तो वे अपने-आप प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि कस्तूरी की सुगन्धि को शपथ से सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती।

Cream will rise to the top
क्रीम विल राइज टू दी टॉप।

—अंग्रेजी कहावत

दूध का मक्खन स्वयं ऊपर आ जायेगा।

एकस्मिन् दुर्लभो गुणविभव।

एक व्यक्ति में अनेक गुणों का होना कठिन है।

कस्यापि कोऽप्यतिशयोऽस्ति स तेन लोके,
ख्यातिं प्रयाति नहि सर्वविदस्तु सर्वे।

किं केतकी फलति किं पनसः सुपुष्पः,
किं नागवल्ल्यपि सुपुष्पफलैरुपेता ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १८३

किसी में कोई एक विशेषता होती है, उसी से वह जगत में प्रसिद्ध हो जाता है। सर्वज्ञ तथा सर्वगुणसम्पन्न कोई नहीं हुआ करता। क्या केवड़े पर फल, पनस (कटहल) पर फूल एवं नागवल्ली पान की बेल पर फल-फूल आते हैं? नहीं आते। फिर भी ये एक-एक विशेषगुण से प्रसिद्धि पा रहे हैं।

७ गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवंशो निरर्थकः।
वसुदेवं परित्यज्य, वासुदेवं नमेज्जनः॥

—प्रसंगरत्नावली

सब जगह गुणों की पूजा होती है, पिता के वंश की नहीं। देखो लोग वसुदेव को छोड़कर वासुदेव को नमस्कार करते हैं।

८. धन से सद्गुण नहीं मिलते, अपितु सद्गुणों से ही धन व अन्यान्य वस्तुएँ मिलती हैं। —पं॰ पद्मसिंह

९. हमारे सद्गुण प्रायः वेष बदले हुए दुर्व्यसन होते हैं।

—लार्ड रोशफूको

१०. बहुत से व्यक्ति सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु पालन नहीं करते। —मिल्टन

११. सम्मान ही सद्गुण का पुरस्कार है। —सिसरो

१२ आकृतिर्गुणान् कथयति।
मनुष्य की आकृति गुणों को प्रकट कर देती है।

१३. जे नर रूपे रूवड़ा, पै नर किसा न होय।
कनक कलश मद भर्यो, ताहि न पूजहि कोय॥

—राजस्थानी-दोहा

२ गुणों का महत्त्व

१. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।

—रघुवंश ३।६२

गुण सर्वत्र अपना प्रभाव जमा लेते हैं।

२. गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ।

—किरातार्जुनीय

गुणों से आकृष्ट संपदायें, गुणी के पास अपने-आप आ जाती हैं।

३. गुणः खल्वनुरागस्य कारणं, न बलात्कारः ।

—मृच्छकटिक

अनुराग का कारण गुण ही होता है, बलात्कार नहीं होता।

४. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः ।

—किरातार्जुनीय

गुण ही मनुष्य को गुरुता देते हैं, समूह नहीं।

५. गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं, दूरेऽपि वसतां सताम् ।
केतकी गन्धमाघ्राय, स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः ॥

प्रसंगरत्नावली

सज्जनों से दूर बसने पर भी उनके गुण जीवननिर्माण में दूत का काम करते हैं। केतकी की सुगन्ध पाकर भ्रमर उसके पास स्वयं चले जाते हैं।

६. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

—कुमारसंभव ५।४५

रत्न किसी की तलाश नहीं किया करता, उसी की तलाश की जाती है।

७. गुणो भूषयते रूपम् ।

—चाणक्यनीति ५।१५

गुण से ही रूप शोभा पाता है।

८. गुणेन ज्ञायते त्वार्यः ।

—चाणक्यनीति ५।८

गुण से आर्य जाना जाता है।

९. एको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषम् ।

एक ही गुण सब दोषों को नाश कर देता है।

१०. छोटा-सा अंकुश हाथी पर नियन्त्रण कर लेता है, छोटा-सा दीपक अन्धकार को दूर कर देता है, छोटा-सा वज्र पर्वत को चूर-चूर कर डालता है। छोटा-सा रत्न मालामाल बना देता है। छोटा-सा मन्त्र देवता को खींच लाता है। छोटा-सा यन्त्र ([illegible]) प्रकाश फैला देता है, छोटी-सी सुई दो को एक बना देती है, छोटी-सी अमृत की बूंद बेहोशी दूर कर देती है, छोटी-सी चपला गगन में रंग ला देती है, इसी प्रकार छोटा-सा एक सद्गुण बेड़ापार कर देता है।

—[illegible]

११. सद्गुण स्वास्थ्य है और दुर्गुण रोग।

—पेट्रार्क

१२. सद्गुण विपत्ति में भी उतना ही चमकता है, जितना सुख-समृद्धि में।

—[illegible]



३ विभिन्न प्रकार के गुण

१. आठ प्रकार के गुण—

अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

—विदुरनीति १।१०४

(१) बुद्धि, (२) कुलीनता, (३) इन्द्रियसंयम, (४) ज्ञान, (५) शूरता, (६) मितभाषण, (७) यथाशक्ति दान (८) कृतज्ञता—ये आठ गुण मनुष्य की शोभा को बढानेवाले हैं।

२. चार सहजगुण—

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं, धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते, चत्वारः सहजा गुणाः॥

—चाणक्यनीति ११।१

उदारता, मिष्टवादिता, धीरता और उचित की जानकारी—ये चार गुण स्वाभाविक होते हैं, किन्तु अभ्यास से नहीं मिल सकते।

३. तेरह मानसिकगुण—

१. उदारता—इस गुण से मनुष्य दूसरे मनुष्य की भूल होने पर सहनशील बना रहता है।

२. अनुकरणप्रियता—इसमें मनुष्य महापुरुषों के सद्गुणों को ग्रहण करता है।

३. प्रभावगुण—इससे मनुष्य दूसरे को गुणवत्ता से सुधार सकता है।

४. आकृतिज्ञान—इससे मनुष्य चाहे जिसको पहचान सकता है।

५. व्यवस्थाज्ञान—इससे मनुष्य अपनी या दूसरों की सुव्यवस्था कर सकता है।

६. अवलोकनगुण—इससे मनुष्य नई-नई चीजों का ज्ञान प्राप्त करता है।

७. गणितज्ञान—इससे दक्षता बढ़ती है।

८. इतिहासज्ञान—इससे प्राचीन वस्तुएँ ध्यान में रहती हैं।

९. समयज्ञान—इससे समय का उपयोग कैसे करना, यह जाना जाता है।

१०. वक्तृत्वज्ञान—इससे आकर्षणशक्ति मिलती है।

११. स्वप्नज्ञान—इससे निकट-भविष्य की बहुत-कुछ बातें जानी जा सकती हैं।

१२. तुलनाशक्ति—इससे विवेचना, वर्गीकरण एवं समालोचना करने की योग्यता प्राप्त की जा सकती है।

१३. सौजन्यगुण—इससे विनय, विवेक, नम्रता एवं सभ्यता की योग्यता मिलती है।

४. कन्फ्यूशियस के कहे हुए पाँच सद्गुण—

(१) जेन, (२) चुन त्जु, (३) ली, (४) ते, (५) वेन।

(१) जेन—मानवतावादी होना।

(२) चुन त्जु—[illegible] व्यवहार [illegible], [illegible] एवं भद्र होना।

(३) ली—सद्व्यवहार और विवेक होना, [illegible] जो ठीक लगे वह कार्य करना।

(४) ते—[illegible]—ईमानदारी, सच्चाई एवं [illegible] होना।

(५) वेन—[illegible] पर रुचि रखना।

५. तीन गुण एवं उसके कार्य आदि—

(क) सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो ! देहे देहिनमव्ययम् ॥

—गीता १४।५

हे अर्जुन ! प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी-आत्मा को देह मे बाँध लेते है।

(ख) सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञान, राग-द्वेषो रजःस्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषा, सर्वभूताश्रित वपु. ॥

—मनुस्मृति १२।२६

यथार्थज्ञान होना सत्त्वगुण का लक्षण है, ज्ञान का न होना तमोगुण का लक्षण है और राग-द्वेष का होना रजोगुण का लक्षण है। सबके शरीरो मे इन सब गुणो का स्वरूप व्याप्त रहता है।

(ग) सत्त्वं सुखे संजयति, रजः कर्मणि भारत !
ज्ञानमावृत्य तु तमः, प्रमादे सजयत्युत ॥

—गीता १४।६

अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख मे एव रजोगुण कर्म मे लगाता है, किन्तु तमोगुण ज्ञान को ढँक कर प्रमाद मे लगाता है।

(घ) देवत्वं सात्त्विका यान्ति, मानुषत्व च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्य-मित्येषा त्रिविधा गति ॥

—मनुस्मृति १२।४०

सात्त्विक-वृत्तिवाले देवयोनी मे, रजोगुणी मनुष्यगति मे और तमोगुणी तिर्यञ्चगति में जाते है।

(ङ) गुणानेतानतीत्य त्रीन्, देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखै - र्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

शरीर के कारणभूत इन तीनों गुणों को लांघकर (निर्गुण होकर) आत्मा जन्म-जरा-मृत्यु के दुःखों से छूट जाता है एवं अमृतपद-मुक्ति को प्राप्त होता है।

(च) त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन!
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योग-क्षेम आत्मवान्॥

—गीता २।४५

हे अर्जुन! सब वेद तीनों गुणों के कार्यरूप संसार को विषय करनेवाले हैं। इसलिए तू असंसारी अर्थात् निष्कामी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु में स्थित तथा योग-क्षेम को न चाहनेवाला और आत्मपरायण बन।

६. गुणातीत—

समदुःखसुखः स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः स उच्यते॥

—गीता १४।२४-२५

जो दुःख-सुख में समान है, आत्मभाव में स्थित है, जिसकी मिट्टी, पत्थर और सोने में समान बुद्धि है, जो प्रिय-अप्रिय को तुल्य समझता है, धैर्यवान है, निन्दा-स्तुति में समान भाव रखता है। मान-अपमान में तुल्य है, मित्र-शत्रु के समान पक्षवाला है और सब प्रकार के आरम्भ का परित्याग करनेवाला है, वह पुरुष गुणातीत कहलाता है।



४ गुणों का नाश एवं प्रकाश

१. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे नासेज्जा, तं जहा—कोहेणं, पडिनिवेसेणं, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं।

—स्थानांग ४।४।२८४

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों का नाश कर देता है (१) क्रोध से, (२) गुण सहन न होने से, (३) अकृतज्ञता से, (४) मिथ्याधारणा के कारण।

२. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे दीवेज्जा तं जहा—अब्भासवत्तिय, परछंदाणुवत्तिय, कज्जहेउ, कयपडिकइए वा।

—स्थानांग ४।४।२८८

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों को प्रकाशित करता है—
(१) विद्याभ्यास के लिए, (२) दूसरे को अनुकूल बनाने के लिए, (३) अपना काम सिद्ध करने के लिए, (४) कृतज्ञता प्रकट करने के लिए।

३. इक्षु दण्डास्तिलाः शूद्रा, कान्ता हेम च मेदिनी,
चन्दन दधि-ताम्बूलं, मर्दनं गुणवर्धनम्।

—चाणक्यनीति ९।१३

इक्षुदण्ड, तिल, शूद्र, स्त्री, हेम, पृथ्वी चन्दन, दही और ताम्बूल, मर्दन होने से, इन ६ चीजों के गुणों में वृद्धि होती है।



गुणज्ञ

१. विरला जानन्ति गुणान्।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १७७

गुणों को जाननेवाले विरले हैं।

२. गुणी सैकड़ों में कहीं, मिल जाते दो एक।
लाखों में मिलना कठिन, गुणद्रष्टा सुविवेक।

—तात्त्विकत्रिशती १६४

३. गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः।
गुण को गुणी ही जानता है।

४. गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः।
अलिरेति वनात् पद्मं न दर्दुरस्त्वेकवासोऽपि।

—शाकुंतल

गुणज्ञ ही गुणवान में प्रेम करता है। गुणहीन व्यक्ति में यह गुण नहीं होता। भौंरा वन से चलकर कमल के पास जाता है, किन्तु मेंढक पानी में रहता हुआ भी कमल के निकट नहीं जाता।

५. [illegible]

६. [illegible] ॥

—[illegible] १।१८

[illegible]

१. गुणी च गुणरागी च, विरलः सरलो जनः।
गुणी एवं गुण के प्रेमी विरले ही सरलपुरुष हैं।

२. गुणवन्तः क्लिश्यन्ते, प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः।
बन्धनमायान्ति शुकाः, यथेष्टसंचारिणः काकाः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८५

गुणीजन प्रायः दुःख पाते हैं और निर्गुण सुखी होते हैं। शुक बन्धन को प्राप्त होते हैं और काक इच्छानुसार घूमते हैं।

३. कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलादिन्दीवरं गोमयात्,
पङ्कात्तामरसं शशाङ्कमुदधे-र्गोपित्ततो रोचना।
काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणिर्दुर्वापि गोरोमतः,
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो यान्ति किं जन्मना॥

—पञ्चतन्त्र १।७९

रेशमी वस्त्र कीड़ों से, सोना पत्थर से, नील-कमल गोबर से, कमल कर्दम से, चन्द्रमा समुद्र से, गोरोचन गाय के पित्त से, अग्नि काष्ठ से, मणि नाग के फण से और दूब गाय के रोमों से उत्पन्न होती है। उत्पत्ति स्थान निम्नकोटि के होने पर भी पूर्वोक्त वस्तुएं प्रसिद्ध हो रही हैं, क्यों न हों! गुणी व्यक्ति अपने गुणों के उदय से ही जगत में प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं, जन्म से नहीं।

४. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

—उत्तररामचरित ४।११

गुणिजनों का सम्मान गुणों से ही होता है, स्त्री-पुरुष के भेद से या आयु के कारण से नहीं होता।

५ हंसा ने सरवर घणां, देश-विदेश गयाह।
सुगुणां ने सज्जन घणां, कुसुम घणां भंवरांह॥

६ गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि, सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं, हेमाश्रयमपेक्षते॥

—चाणक्यनीति १६।१०

गुणों से सर्वज्ञ के समान पुरुष भी निराश्रय एवं अकेला दुःख ही पाता है। जैसे—अनमोल माणिक्य भी सोने में जड़े जाने की अपेक्षा रखता है।

७ गुणिजनसंगति—

(क) जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसंगमः ?

—सिन्दूरप्रकरण ६६

गुणिजनों का सम्पर्क क्या इच्छित काम नहीं करता ?

(ख) स्तोकोऽपि गुणिसंसर्गः, श्रेयसे भूयसे भवेत्।

—सूक्तरत्नावली

गुणिजनों का थोड़ा-सा संसर्ग भी महान् कल्याणकारी हो जाता है।



७ गुणग्राहक बनो !

१. कंखे गुणे जाव सरीरभेउ ।

—उत्तराध्ययन ४।१३

अन्त समय तक गुणों की आकांक्षा करते रहो ।

२ गुणेषु क्रियतां यत्नः, किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभि- र्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥

—प्रसङ्गरत्नावली

गुणों के लिए प्रयत्न करो । आडम्बर में क्या है ? दूध न देनेवाली गायें केवल घंटियाँ बाँधने से नहीं बिका करतीं ।

३. गुणेष्वनादरं भ्रातः, पूर्णश्रीरपि मा कृथाः ।
सपूर्णोऽपि घटः कूपे, गुणच्छेदात् पतत्यधः ॥

अरे भाई ! पूर्ण श्रीमान् होकर भी गुणों का अनादर मत कर । देख ! भरा हुआ घड़ा भी गुण (डोरी) के कट जाने से कुएँ में गिर जाता है ।

४ सन्धयेत् सरला सूचि-र्वक्रा छेदाय कर्तरी ।
अतो विमुच्य वक्रत्व, गुणानेव समाश्रय ॥

सीधी-सरल सूई फटे-टूटे को जोड़ती है और वक्र-कैंची अखण्ड को काटती है । अतः वक्रता को छोड़कर गुणों को धारण कर !
(सूई गुण अर्थात् धागे) को धारण करके ही वस्त्र आदि को सीती है) ।

५ ज्ञान गरीबी गुरु धर्म, नरम वचन निरदोष ।
तुलसी कबहू न छाड़िये, शील सत्य सन्तोष ॥

६. गुण जब मिले, जहाँ से मिले, जिस कदर मिले, ले लो ।

७ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च, शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारमादद्यात्, पुष्पेभ्य इव षट्पदः॥

—भागवत ११।८।१०

जैसे—भौंरा छोटे-बड़े सभी फूलों से रस लेता है, इसी प्रकार कुशल (गुणी) मनुष्य को चाहिए कि वह छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से सार ग्रहण करे।

८ अनन्तशास्त्रं बहुला च विद्या, अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

—चाणक्यनीति १५।१०

शास्त्रों का ज्ञान अनन्त है, विद्याएँ अनेक हैं, समय अल्प है एवं विघ्न-बाधाएँ बहुत हैं। अतः जैसे हंस जलमिश्रित दूध में से दूध-दूध पी लेता है, वैसे ही जो पदार्थ सारभूत हो, उसे [illegible] ग्रहण करना।

९. Art is long and time is short.

आर्ट इज लोंग एण्ड टाइम इज शार्ट।

—अंग्रेजी कहावत

● [illegible] कालो बहवो च [illegible]।

—संस्कृत कहावत

समय थोड़ा है और विद्याएँ बहुत हैं।

१०. [illegible]
[illegible]॥

—सुभाषित-[illegible], पृष्ठ [illegible]

[illegible]

१. क्षारभावमपहाय वारिधे, गृह्णन्ते सलिलमेव वारिदाः।

—उपदेशप्रासाद

मेघ समुद्र के खारेपन को छोडकर केवल जल को ही ग्रहण करते हैं।

२. म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम्।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

म्लेच्छों के भी सदाचरण ले लेने चाहिए।

३. शत्रोरपि गुणा ग्राह्या।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

शत्रु से भी गुण ले लेना चाहिए।

४. विषादप्यमृतं ग्राह्य-ममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमा विद्या, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

—चाणक्यनीति १।१६

मिल सकता हो तो विष से अमृत, गन्दगी से सोना, नीच से उत्तम विद्या और दुष्कुल से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिए।

५. स्त्रियो रत्नान्यथोविद्या, धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि, समादेयानि सर्वतः॥

—मनुस्मृति २।२४०

गुणवती स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, सुभाषित और नाना प्रकार की कलायें—ये चीजें हर एक से ले लेनी चाहिए।

६. युक्तियुक्त उपादेयं, वचनं बालकादपि।
अन्यत् तृणमिव त्याज्य-मप्युक्तं पद्मजन्मना॥

—योगवासिष्ठ २।१८।३

युक्तियुक्त वचन को बालक से भी ले लेना चाहिए और युक्तिहीन वचन चाहे ब्रह्मा का भी कहा न हो, वह तृणवत् त्याज्य है।

ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चितः।

—किरातार्जुनीय २।५

विद्वान् लोग किसी वचन के विषय में यह नहीं देखते कि उसका कहने-वाला कौन है। वे तो केवल गुण के पक्षपाती होते हैं।

१८ गुणी बन गुण को लेना है, हमें दुर्गुण से क्या मतलब ?[1]
कुएं से नीर पीना है, हमें कचरे से क्या मतलब ? ॥ध्रुव॥

हम तो ग्राहक हैं चन्दन के, भले ही सांप लिपटे हों।
मुग्ध हैं पुष्प-सुरभी पर, हमें कांटों से क्या मतलब ? गुणी॥१॥

छाछ खट्टी भले ही हो, हम तो मक्खन के भूखे हैं।
इक्षु-रस के पिपासु हैं, हमें छिलकों से क्या मतलब ? गुणी॥२॥

न खल से काम है बिल्कुल, हमें तो तेल लेना है।
आम खाने के इच्छुक हैं, हमें गुठली से क्या मतलब ? गुणी॥३॥

मणी के हम तो ग्राहक हैं, सांप जहरी भले ही हो।
गोल मोती के गर्जी हैं, सीप बाकी से क्या मतलब ? गुणी॥४॥

रंग कोयल का काला है, तो भी मिठास ले देखें।
काम तबियत की रग से है, हमें गोरों से क्या मतलब ? गुणी॥५॥

मिले गुण जिस तरफ जिससे, हम तो लेते हैं देख।
चाहे किसी मजहब का हो, हमें मजहब से क्या मतलब ? गुणी॥६॥

ऐब जिन शख्स दुनिया में, नजर कोई नहीं आता।
सभी अन्दर में बसे हैं, रहे 'धन' उनको क्या मतलब ? गुणी॥७॥

—उपदेश सुमनमाला

१९. गुणिगणगणनारम्भे, न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद् यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद बन्ध्या कीदृशी नाम॥

—हितोपदेश प्रास्ताविका १५

---

१. अर्द्ध-कव्वाली

गुणीजनों की गणना करते समय जिसकी लेखनी शीघ्रता से नहीं चलती, उस पुत्र से यदि माता पुत्रवती कही जाय तो कहो ! फिर वन्ध्यास्त्री कैसी होगी ?

२०. आरोप्यते शिला शैले, यत्नेन महता यथा ।
निपात्यते क्षणेनाध-स्तथात्मा गुण-दोषयो ।

—हितोपदेश २।४७

जैसे—किसी ऊँचे स्थान पर शिला बड़े यत्न से चढ़ाई जाती है और नीचे क्षणभर में गिरा दी जाती है, गुण और दोष के विषय में आत्मा की भी ऐसी ही स्थिति है, यानी गुणों का ग्रहण कठिन है एवं दोषों का ग्रहण सरल है ।



गुणग्राही के अभाव मे

१ गुणिनोऽपि हि सीदन्ति, गुणग्राही न चेदिह ।
सगुण पूर्णकुम्भोऽपि, कूपएव निमज्जति ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

यदि गुणग्राही न हो तो गुणीजन भी निम्नता को प्राप्त हो जाते हैं। देखो! भरा घड़ा कुएँ मे गिर जाता है, यदि उसकी रस्सी (गुण) को कोई पकड़नेवाला न हो।

२. जब गुन के गाहक मिलें, तब गुण लाख बिकाय ।
जब गुन का गाहक नही, कौड़ी बदले जाय ॥

—कबीर

३ सुयोग्य व्यक्ति के अभाव में योग्यता का मूल्य बहुत कम हो जाता है।

—नेपोलियन



९

गुणहीन

१. निर्गुणस्य हतं रूपम् ।

—चाणक्यनीति ८।१६

गुणहीन के रूप-सौन्दर्य को धिक्कार है ।

२ सीरत नही जो अच्छी, सूरत फिजूल है ।
जिस गुल मे बू नही, वह कागज का फूल है ।।
सीरत के हम गुलाम हैं, सूरत हुई तो क्या ?
सुर्खो-सफेद मिट्टी की, मूरत हुई तो क्या ?

—उर्दू शेर

३ स्वयमगुणं वस्तु न खलु पक्षपाताद् गुणवद् भवति ।
न गोपालस्नेहाद् उक्षा क्षरति क्षीरम् ।।

नीतिवाक्यामृत १६।५-६

निर्गुणवस्तु किसी के पक्षपात से गुणयुक्त नहीं होती, ग्वाले के स्नेह से बैल दूध नहीं दे सकता ।

४. पुरुषा अपि बाणा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय ?

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

गुण से च्युत-पतित पुरुष और बाण किसको भय उत्पन्न नहीं करता ? (यहाँ गुण शब्द के दो अर्थ है—सद्गुण और धनुष की डोरी) ।

५. गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति ।

—सुभाषितरत्न खण्डमंजूषा

गुणहीन व्यक्ति अधिक बोला करते हैं ।

६ नहीं चम्पा नहीं केतकी, भंवर ! देख मत भूल।
रूपरूडो गुणबाहिरो, रोहीड़ा रो फूल।

७ डूंगर दूरासूं रलियामणा, दीसै ईसरदास।
नेड़ा जाकर देखिए, (तो) पत्थर पाणी घास॥

८. पाषाणै: परिपूरिता वसुमती वज्रो मणिर्दुर्लभः।

पत्थरों से पृथ्वी भरी पड़ी है, किन्तु वज्रमणि मिलना कठिन है। ऐसे ही निर्गुण-व्यक्ति बहुत हैं, किन्तु गुणी दुर्लभ हैं।

९. गुणहीन मृतकतुल्य।

शालिवाहन राजा एवं पादलिप्ताचार्य का संवाद—

राजा—कौन जीवित है ?

आचार्य—जो गुणी एवं चारित्रशील है, वही जीवित है।

राजा—क्यों ?

आचार्य—मैंने एक दिन जंगलों में कहा—निर्गुण एवं चारित्रहीन पुरुष पशु-मृग आदि के समान है। तब मृग आदि सभी ने इस मंतव्य का विरोध करते हुए इस प्रकार कहा—

मृगादि पशु—हम मरने के बाद भी चर्म आदि के रूप में लोगों के काम आते हैं।

गायें—हम घास खाकर दूध देती हैं।

मुर्गे—[illegible]

वृक्ष—हम लोगों को फल-फूल आदि देते हैं।

घास—मैं पशुओं का पोषण करता हूँ।

[illegible]—मैं [illegible] हूँ।

राजन् ! उसी दिन से यह निर्णय किया गया कि निर्गुण-चारित्रहीन व्यक्ति मृतक के तुल्य है।



गुणशून्य नाम

१. आख्या रो आंधो, नाम नैणसुख।
जन्म रो मंगतो, नाम दाताराम।
जन्म रो दुखियारी, नाम सदासुख।
बांधै लंगोटी, नाम पीताम्बरदास।
मांगे भीख, नाम लखपतराय।
कनै कोडी कोनी र नाम किरोडीमल।
पढ्यो न लिख्यो नाम विद्याधर।
झांटमान झूंपडी र नाम तारागढ।

—राजस्थानी कहावतें

२. नाम दियो सूरो रणधीर, भाग्यो जावै दीठा तीर।
नाम दियो छे धर्मोशाह, पाप करण री नहीं परवाह॥
नाम दियो बाई रो लाछ्, मांगी न मिले कुल्हडी छाछ।
नाम दियो बाई रो चम्पकली, गोबर वीणे गली-गली॥

—राजस्थानी-पद्य

३. हीरालाल नाम सो तो कंकर को करे कार,
बुद्धिचंद नाम पूंजी गांठ की गमावे है।
नाम तो संतोषदास पल में भड़क उठे,
गंभीरमल्ल नाम सो तो लोकन्ने लड़ावे है॥
शोभाचंद नाम सो तो कुशोभा करत नित,
प्यारचंद नाम न्यारे जग में दसावे है।

कहै कवि नाथूलाल नाम के हवाल सुनो,
गुण और नाम माय विरला ही मे पावै है॥
कस्तूरी है नाम जामें बास नाहीं हींगहू की,
रूपीबाई नाम रूप काग ने लजायो है।
नाम है जड़ाव ताके सोनो नहीं तार पास,
राजीबाई नाम रानै चौवडो चढायो है॥
चाँदबाई नाम सो तो काजल तूं काली दीसै,
स्यागणीबाई नाम जन्म रांड में गमायो है।
कहै कवि नाथूलाल गुण बिना नाम सो तो,
स्वान हू के अंग पे सुगन्ध हो लगायो है॥

४. सेठ के पुत्र का नाम ठनठनपाल था। बहू का आग्रह था कि इस नाम को बदल दें। ठनठन नहीं माना। बहू गुस्से होकर पीहर की तरफ रवाना हुई। रास्ते में एक मुर्दा मिला, जिसका नाम अमरचन्द था। एक भिखमंगा मिला, जिसका नाम धनपाल था। आगे छाना चुगती हुई एक दासी मिली, जिसका नाम लछमी था। इन सब के नामों को सुनकर बहू को ज्ञान हो गया और निम्नलिखित दोहा कहती हुई वह वापिस अपने घर आ गई।

अमर मरन्तो मैं सुण्यो, भीख मांगे धनपाल।
लिछमी छाणा बीणती, आछो म्हारो ठणठणपाल॥

—कथा का दोहा



दोष

१. दुष् वैकृत्ये, दुष्यन्ति-विकृति भजन्ति तेन तस्मिन् वा,
प्राणिन इति दोषः । दूषणं वा दोषः ।

—अभिधानराजेन्द्रकोष, भाग ४ पृष्ठ २६३१

दुष् धातु विकार के अर्थ में है । जिससे अथवा जिसमें प्राणी विकृत—दूषित होते हैं, उसको दोष कहते हैं अथवा दूषण का नाम दोष है ।

२. बहूनपि गुणानेको दोषो ग्रसति ।

—कौटिलीयअर्थशास्त्र

एक ही दोष अनेक गुणों को खा जाता है ।

३. लाख गुनों को दोष इक, कर देता बदनाम ।
खाने का खोनी मजा, कडुवी एक बदाम ॥

—दोहा-संदोह

४. परस्वानां च हरणं, परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च, त्रयो दोषा क्षयावहा ॥

—वाल्मीकि रामायण ६।८७।१६

दूसरों के धनों का हरण, दूसरों की स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध और मित्रों के प्रति अतिशङ्का—ये तीन दोष मनुष्य का नाश करने वाले हैं ।

५. उस्सूरसेय्या परदारसेवना,
वेरप्पसवो च अनत्थता च ।
पापा च मित्ता सुकदरियता च,
एते छ ठाना पुरिसं धंसयन्ति ॥

—दीघनिकाय ३।८।२

अति निद्रा, परस्त्रीगमन, लड़ना-झगड़ना, अनर्थ करना, बुरे लोगों की मित्रता और अतिकृपणता—ये छह दोष मनुष्य को बर्बाद करनेवाले हैं।

६. दो बड़े दोष हैं —

(१) धन के साथ घमण्ड, (२) सत्ता के साथ जुल्म।

७. षड् दोषाः पुरुषेणेह, हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध, आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

—विदुरनीति १।८३

जो अपना कल्याण चाहता है, उसे (१) निद्रा, (२) तन्द्रा (नींद की पूर्व अवस्था), (३) भय, (४) क्रोध, (५) आलस्य, (६) देर से काम करने का स्वभाव—ये छह दुर्गुण छोड़ देने चाहिएँ।

८. दोष को छोटा मत समझो।

छोटा-सा कांटा पैर को नहीं टिकने देता, छोटा-सा कंकण आंख को नहीं खुलने देता, छोटी-सी फुन्सी व [illegible] चैन नहीं पड़ने देती, छोटी-सी आग की चिनगारी सारे वन गांव को जला डालती है, छोटी-सी खटाई की बूंद मनों दूध को फाड़ डालती है, छोटा-सा छिद्र जहाज को डुबो देता है, छोटी-सी कर्म की बात जीवन कलह बना देती है, छोटा-सा मच्छर नींद उड़ा देता है तथा छोटी-सी दवाई बड़े-बड़े रोगों एवं भयों को नष्ट कर देती है, वैसे ही छोटा-सा दोष सर्व-नाशी नुकसान कर देता है।

- रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि।

—रामचरितमानस अरण्यकाण्ड २१

९. दोष आते ही गुणों का पलायन—मनुष्य जीवन के [illegible] चार मित्र मिले। उनके नाम थे—शील, [illegible], विनय और समृद्धि। मनुष्य ने उनसे विश्वासघात किये, [illegible] विनय, शील, [illegible] और [illegible] चले गए। [illegible] चार दुर्गुण मिले, उनके नाम थे—क्रोध,

लोभ, भय एवं रोग। पूछने पर उन्होंने भी अपने निवासस्थान क्रमशः दिमाग, आंख, हृदय और पेट बतलाए। मनुष्य ने विस्मित होकर कहा—वहां तो बुद्धि आदि रहती हैं ? तब क्रोध आदि बोले—हमारे आने पर वे (क्रोध से बुद्धि, लोभ से लज्जा, भय से हिम्मत और रोग से तंदुरस्ती) घर छोड़ कर भाग जाती हैं।

१० पित्तेन दूनरसने, सितापि तिक्तायते।

—नैषधीय-चरित्र ३।६।

पित्त के कारण जिह्वा के दूषित हो जाने पर मिश्री भी कड़वी लगती है (आंखों में पीलिया हो जाने पर श्वेतवस्तु भी पीली दीखने लगती है।) इसी प्रकार दोषों के प्रविष्ट होने पर गुण भी दूषित हो जाते हैं।



१२ स्वदोष

१ सब देखें पर आपनो, दोष न देखें कोय।
चारे उजेरो दीप पे, तले अंधेरो होय॥

—वृन्दकवि

२ आप अपनी ऐब से, वाक़िफ़ नहीं होता कोई।
जैसे बू अपने दहन (मुँह) की, आती है कम नाक में॥
उतनी ही दुश्वार अपने, ऐब की पहचान है।
जिस तरह करनी मलामत, और की आसान है॥

—उर्दू शेर

३ जब कभी मुझे दोष देखने की इच्छा होती है, मैं स्वयं से प्रारम्भ करता हूँ और उससे आगे नहीं बढ़ पाता।

—डेविड ग्रेसन

४. अपना दोष ढूँढ निकालना, ज्ञानी वीरों का काम है।

—विवेकानन्द

५ [illegible] न [illegible], [illegible] [illegible] प्यार।
[illegible] छिपाना दोष निज, इससे [illegible] भार॥

६ बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय॥

—कबीर

७. मद, मत्सरी, उच्छृङ्खल [illegible], [illegible] और [illegible] का विरोध —इन दोषों से [illegible] को [illegible] में [illegible]।

—[illegible]

८. जैसे—बाप के खाता-वही संभालनेवाले को लेना-देना दोनों स्वीकार करना पड़ता है, उसी प्रकार यदि तू अपने गुणों को शास्त्रों से मिलाता है तो अपने दोषों को भी उनसे मिलाकर देख !

९. धमेड जो अभूएण, अकम्मं अत्त-कम्मुणा ।
अदुवा तुमं कासित्ति, महामोहं पकुव्वइ ॥

—दशाश्रुतस्कंध ९।८

जो अपने किए हुए दुष्कर्म को दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर डालकर उसे लाञ्छित करता है कि यह पाप तूने किया है, वह महामोहकर्म का बन्ध करता है ।



१३

पर-दोष

१. यः संसदि परदोषं शंसति, स स्वदोष-बहुत्वं प्रख्यापयति।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

जो सभा में दूसरों का दोष कहता है, वह अपने दोषों की बहुलता प्रकट करता है।

२. दूषणं मतिरुपैति नोत्तमो, मध्यमो स्पृशति भाषते न च।
भीषणं सर्वमेव भाषतेऽधमो, रारटीति सहसा धमाधमः॥

उत्तमबुद्धि परदोष का स्पर्श भी नहीं करती, मध्यमबुद्धि स्पर्श तो कर लेती है, लेकिन कहती नहीं, अधमबुद्धि वाला कह देता है, किन्तु अधमाधम तो [illegible] सुनाने लगता है।

३. [illegible] की [illegible] है वह [illegible] (दाग) [illegible] देखती है।

४. यदा पश्यामि स्वदोषान्, दृष्टिः संकुचिता भवेत्।
विशाला जायते सैव, परेषां दोषदर्शने॥

जब अपने दोषों को देखता हूँ तब दृष्टि छोटी हो जाती है और दूसरों के दोष देखते समय वही बड़ी हो जाती है।

५. [illegible] के [illegible] बनाई।

- [illegible] न बोलें, [illegible] न [illegible] दोषों [illegible] [illegible] की [illegible]।

—[illegible]

६. छज्ज तां बोले छालनी की बोले।

—पंजाबी कहावत

७. चित्रकार ने घर की दीवार पर एक चित्र रखा एवं उसमे गलती बताने की लोगो से प्रार्थना की। लोग आते गये और चित्र को काला करते गये। दूसरे दिन एक चित्र रखकर उसे सुधारने की प्रार्थना की, लेकिन किसी ने भी सुधारने का सुझाव न दिया।

८. न सिया तोत्तगवेसए।

—उत्तराध्ययन १।४०

दूसरों के छलछिद्र नहीं देखना चाहिए।



१४ गुणों मे दोष

१. गुण पूरी रूरी सुरभि, कस्तूरी कमनीय।
एकहि अवगुण मलिनता, हरै जनक को जीय॥

२ पूल हुवे जठे काटा भी हुवै।

- गाम हुवे जठे (ढेढवाडा) अकूरडी भी हुवै।
- हवेली हुवे जठे तारतखानो भी हुवै।
- सका मे दलदरी भी हुवै।

—राजस्थानी कहावतें

१. No garden without weeds
नो गार्डन विदाउट वीड्स।

—अंग्रेजी कहावत

कोई उद्यान ऐसा नहीं है, जिसमें घास-फूस बिल्कुल न हो।



१६ उपकार (अहसान)

१. सहयोगदानमुपकारः, लौकिको लोकोत्तरश्च।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६-२०

किसी को सहयोग देने का नाम उपकार है, वह दो प्रकार का है—लौकिक और लोकोत्तर। भौतिकसहायता देना लौकिकउपकार है और आत्मिकसहायता अर्थात् धर्मोपदेश एवं निर्वद्यदानादि द्वारा सहायता देना लोकोत्तरउपकार है।

२. नीचेपूपकृतं उदके विशीर्णं लवणमिव।

—नीतिवाक्यामृत ११।४३

नीचों का उपकार करना जल में लवण डालने के तुल्य है।

३. उपकृत्योद्घाटनं वैरकरणमिव।

—नीतिवाक्यामृत ११।४७

उपकार करके कहना, वैर करने के बराबर है।

४. जिसने कुछ अहसां किया, एक बोझ हम पर रख दिया।
सिर से तिनका क्या उतारा, सर पे छप्पर रख दिया॥

—[illegible]

५. तलवार मारे एक बार, अहसान मारे बार-बार।

—हिन्दी कहावत

६. अगर किसी को मारना, अहसान करके छोड़ दो।
खुद-ब-खुद मर जाएगा, वह अगर्चे इन्सान है॥

—उर्दू शेर

७ दल्यानु दलामण आपे तेमा पाड शानो ! माग्यु आपे तेमा शानो पाड। नातन् नोतरुं ने परबनु पाणी तेमा पाडशण शु !

—गुजराती कहावत



१७ परोपकार

१. अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

अठारहपुराणों में व्यासजी के दो ही वचन मुख्य हैं—दूसरों का उपकार करना पुण्य है और दूसरों को दुःख देना पाप है ।

२. परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीडा सम नहिं अधमाई ।
—रामचरितमानस

३. संसारे न परोपकार सदृशं, पश्यामि पुण्यं सताम् ।
—क्षेमेन्द्रकवि

मेरी दृष्टि में सत्पुरुषों के लिए परोपकार जैसा पुण्य संसार में दूसरा कोई नहीं है ।

४. परोपकृति-कैवल्ये, तोलयित्वा जनार्दनः ।
गुर्वीमुपकृतिं मत्वा, ह्यवतारान् दशाऽग्रहीत् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

परोपकार और मोक्ष—इन दोनों को तौलने पर उपकार भारी निकला, अतएव विष्णु भगवान ने परोपकार करने के लिए दस अवतार लिए ।

५. नोपकारं विना प्रीतिः, कथंचित् कस्यचिद् भवेत् ।
उपयाचितदानेन, यतो देवा फलप्रदाः ॥
—पंचतंत्र २।५२

उपकार किए बिना किसी को किसी के साथ प्रेम नहीं होता । मनौती करने पर ही देवता मनोरथ पूर्ण करते हैं ।

६. घड़ी-घड़ी घड़ियाल, प्रकट यह शब्द पुकारे ।
अवसर भये ऊघता, जागले मिनख-जमारे ।
दुनिया रे सिर दंड, घड़ी-घड़ी आयु घटता ।
काठ गिरे करवत्त, वार कितियेक कटता ।
तिण हेत चेत चेतन चतुर ! धर्मशील दिलमाहि धर !
यह वात सार संसार में, नयूहिक पर-उपकार कर !

—भावालोकसागर

७ लोकोपकारी जीवन के तीन सूत्र—
सत्य, संयम और सेवा ।

—विनोबा

८. परोपकार का अर्थ है—दूसरों का भला चाहना, दूसरों का भला करना और सेवा करना ।

—गांधी

९. श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां, परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक ७२

दयालु मनुष्यों के कान शास्त्र-श्रवण से, हाथ दान से, और शरीर परोपकार से शोभित होते हैं, लेकिन कुण्डल, कङ्कण और चन्दन से नहीं ।



१८ प्रत्युपकार [उपकार का बदला]

१. उपकार करना मनुष्यता का उच्चगुण है और उपकार चाहना पामरता है।

२. महान्, मेघराज की तरह उपकार का बदला नहीं चाहते।

—तिरुवल्लुवर

३. ईसा ने दस कोढ़ियों के घाव साफ किए। एक ने आभार प्रकट किया, शेष यों ही गए।

४. मय्येव जीर्णतां यातु, यत् त्वयोपकृतं हरे!
जनः प्रत्युपकारार्थी, विपदामभिकाङ्क्षते।

—वाल्मीकि रामायण

लंकाविजय के बाद हनुमान विदा होने लगे, तब राम ने कहा—हनुमान! तुमने जो हमारा उपकार किया है, उसे हम हजम करना चाहते हैं अर्थात् उसका बदला देना नहीं चाहते, क्योंकि प्रत्युपकार करने का इच्छुक व्यक्ति उपकारी के लिए वास्तव में विपत्ति की इच्छा करनेवाला होता है।

५. प्रत्युपकुर्वन् बह्वपि, न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः।

—श्राद्धविधि

प्रत्युपकारी—उपकार का बदला चुकानेवाला पूर्वोपकारी के बराबर कभी नहीं होता।

६ तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो ! तं जहा—
अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स ।

—स्थानांग ३।१।१३५

हे आयुष्मन् श्रमण ! तीनों के उपकार का बदला चुकाना कठिन है—
माता-पिता का, स्वामी का और धर्माचार्य का ।

७ स पुमान् अवदातचरितो यः प्रत्युपकारमनपेक्ष्य परोपकारं करोति ।

—नीतिवाक्यामृत २६।२१

प्रत्युपकार की आशा न रखकर दूसरों का उपकार करनेवाले का चरित्र स्तुति करने योग्य है ।



१९

कृतज्ञता और कृतघ्न

१. उपकारी का अपराध हो जाने पर उसे क्षमा कर देना कृतज्ञता है।

२. कृतज्ञता शाब्दिक धन्यवाद से कहीं बढ़कर है और कार्य, शब्दों
अधिक प्रकट करता है। —लावे

३. कृतघ्नता के बाद सहने में सबसे ज्यादा कष्टप्रद कृतज्ञता है।
—एच. डब्ल्यू. बी

४. किसी दार्शनिक को शब्दों की इतनी कमी महसूस नहीं हुई, जित
कृतज्ञ को। —गोए

५. प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः,
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
उदकममृततुल्यं दद्यु - राजीवनान्तं,
नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥
—शाङ्ग

बचपन में पिये हुए थोड़े से पानी का स्मरण करते हुए नारियल
वृक्ष जीवनभर अपने सिर पर फलों का बोझा धारण करके
मनुष्यों को अमृततुल्य जल देते रहते हैं, क्योंकि सज्जन किए
उपकार को कभी नहीं भूला करते।

६. कृतज्ञ शेर—अपराधी गुलाम छिपकर भागा। उसने गुफा में
शेर का काँटा निकाला। सिपाहियों ने गुलाम और शेर दो
पकड़कर हाजिर किया। बादशाह ने गुलाम को मारने के लिए
पिंजरे में डाला। कृतज्ञ शेर ने अपने उपकारी को नहीं मारा।

परोपकारी

१. परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये।

—सुभाषितरत्न-खण्डमञ्जूषा

परोपकार में लगे हुए पुरुषों को अपने काम का ध्यान नहीं रहता।

२. पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥
रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैर्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डखण्डैर्मलयाचलः किं, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

—[illegible]

नदियाँ स्वयं पानी नहीं पीतीं, वृक्ष फल नहीं खाते और मेघ सस्य का भक्षण नहीं करते, क्योंकि सज्जनों की विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं।

रत्नाकर (समुद्र) को रत्नों से क्या काम? विन्ध्याचल को हाथियों से क्या काम है और मलयाचल को चन्दन के टुकड़ों से क्या काम है? [illegible]

३. [illegible]
[illegible]

—[illegible]

[illegible]

तो क्या हुआ ? वह अपने शरीर से भी दुनिया के संताप का नाश कर रहा है।

४. पत्र-पुष्प-फल-च्छाया, मूल-वल्कल-दारुभिः।
गन्ध-निर्यास-भस्मास्थि-तोक्मैः कामान् वितन्वते ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ २४७

वृक्ष अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, मूल, वल्कल, काष्ठ, गन्ध, दूध, रस, भस्म, गुठली और कोमल-अङ्कुर से प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं।
[हरा-भरा वृक्ष फल, फूल एवं छाया देता है। सूखने पर टेबल कुर्सी, पट्टे, किवाड़ आदि बनकर जगत की सेवा करता है, ईंधन बनकर रसोई आदि बनाता है तथा मनुष्यों के मुर्दे को जलाता है। अग्नि राख बनकर भी बर्तन आदि को साफ करता है।]

५. दीपक जलकर भी प्रकाश देता है, पंखा स्वयं घूमकर भी लोगों को हवा देता है तथा केश कटे होकर भी मनुष्यों की शोभा बढ़ाते हैं। मनुष्यो! तुम भी इनसे कुछ सीखो एवं परोपकारी बनो!



१. परोपकारशून्यस्य, धिग् मनुष्यस्य जीवितम्।
धन्यास्ते पशवो येषां, चर्माप्युपकरोति हि॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

परोपकारहीन मनुष्य का जीना धिक्कार है। वे पशु धन्य हैं, जिनके चाम भी लोगों का उपकार करते हैं।

२. स लोहकारभस्त्रेव, श्वसन्नपि न जीवति।

—योगशास्त्र

उपकारहीन व्यक्ति लोहार की धौंकनी की तरह श्वास लेता हुआ भी मुर्दा है।

३ तृणं चाहं वरं मन्ये, नरादनुपकारिणः।
घासो भूत्वा पशून् पाति, भीरून् पाति रणाङ्गणे॥

—शार्ङ्गधर

उपकारहीन व्यक्ति से तो मैं तृण को भी अच्छा मानता हूँ, क्योंकि वह घासरूप में पशुओं की रक्षा करता है और संग्राम में कायरपुरुषों की रक्षा करता है।

४. जो नर हैं [illegible]
पुनि भार परिवार मैं, [illegible]॥

५. [illegible]
[illegible]॥

—वृन्द



२२ कृतघ्न

१. कृतमुपकारं हन्तीति कृतघ्न ।

किए हुए उपकार को जो घात करता है वह कृतघ्न है।

२. कृतमपि महोपकारं, पयइव पीत्वा निरातङ्क ।
प्रत्युत हंतु यतने काकोदरसोदर खलो जयति ॥

— सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

दुष्ट कृतघ्न किए हुए महान् उपकार को दूध की तरह पीकर सर्पवत् उल्टा दूध पिलानेवाले को ही काटने की चेष्टा करता है।

३ खावे जिकी ही थाली मे हगै।

- खावे जिकी ही थाली ने फोडै।
- खावै खसम रो र गीत गावै वीरै रा।

—राजस्थानी कहावतें

४. मेरी बिल्ली और मेरे से ही म्याऊँ !

—हिन्दी कहावत

५. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमा ।

—कथासरित्सागर

धन के लोभ से अन्धे कृतघ्न व्यक्ति उपकार की दृष्टि से देखने योग्य नहीं होते।

६. कृतघ्नानां शिवं कुतः !

कथासरित्सागर

कृतघ्नों का कल्याण कहाँ !

७. गोघ्ने चैव सुरापे च, चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः, कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

—वाल्मीकिरामायण ४।३४।१२

गोघाती, शराबी, चोर और व्रतभ्रष्ट—इन सबके लिए तो सत्पुरुषों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है, किन्तु कृतघ्न के विषय में कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

८. ऋषि और चाण्डालिनी का संवाद—

ऋषि—

कर खप्पर सिर श्वान है, लोहू चूवतो जाय।
इतना सब चण्डालिनी, ऋषि पूछत है बात?

चाण्डालिनी—

तुम तो ऋषि भोरे भए, नहिं जानत हो भेद।
कृतघ्नी को नरस्पर्श, उज्ज्वल है गुण्डर!



२३

उदार और उदारता

१. अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

—पञ्चतन्त्र ५।३८

यह अपना है और यह पराया है—ऐसा विचार छोटी समझवाले ही करते हैं, उदारचरितों के लिए तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है ।

२. उदारमनवाले विभिन्नधर्मों में अनुदार फर्क देखते हैं ।

—चीनी कहावत

३. उदार आदमी का वैभव गांव के बीचोंबीच उगे हुए फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है ।

—तिरुवल्लुवर

४. परगृहे सर्वोऽपि विक्रमादित्यायते ॥

—नीतिवाक्यामृत [illegible]

सभी मनुष्य दूसरों के घर में आकर उसके धनादि का व्यय कराने में [illegible] राजा विक्रमादित्य की तरह उदार हो जाते हैं ।

५. उदारता अधिक देने में नहीं, किन्तु समझदारी से देने में है ।

—फ्रैंकलिन

६. उदारता के बिना [illegible] जीवन की [illegible] एवं [illegible] की [illegible] है ।

—[illegible]



२४

१ पात्र-कुपात्र हर कोई ने देवे, तिणने कहीजे दातार ।

—प्रतापत की चोपाई १६।४०

२. याचितारं निराकर्तुं, सतां जिह्वा जडायते ।

—सुभाषितसंग्रह

मांगनेवाले को नहीं कहने के लिए सत्पुरुषों की जीभ जड़वत् हो जाती है ।

३. [illegible] शिखिग्रामं, जीव जीवनदायकम् ।
[illegible], [illegible] महात्मनाम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७३

वर्ण ने स्वर्ण, शिखि ने मोर, मेघ ने जीव (पानी) और दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दान दे दीं, क्योंकि महात्माओं के लिए कुछ भी अदेय [illegible] होता ही नहीं ।

४ [illegible] सूर्य, [illegible] ।
[illegible] ॥

—[illegible] ४।५८

[illegible]

५. दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा, दक्षिणावता दिवि सूर्यास: ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते, दक्षिणावन्त प्रतिरन्त आयु: ॥
—ऋग्वेद, १।१२५।६

दानियों के पास अनेक प्रकार का ऐश्वर्य होता है, दानी के लिए ही आकाश में सूर्य प्रकाशमान है। दानी अपने दान से अमृत पाता है, वह अतिदीर्घ आयु प्राप्त करता है।

६. दाता नीचोऽपि सेव्य स्याद्, निष्फलो न महानपि ।
जलार्थी वारिधिं त्यक्त्वा, पश्य कूपं निषेवते ॥
—प्रसंगरत्नावली

छोटा होने पर भी दाता की सेवा की जाती है, लेकिन फल न देनेवाले महान व्यक्ति की नहीं की जाती। देखो, जल पीने का इच्छुक समुद्र को छोड़कर इसीलिए कुएँ की सेवा करता है।

७. दाता और याचक का भेद—

एकेन तिष्ठताऽधस्तादन्येनोपरितिष्ठता ।
दातृ-याचकयोर्भेद, कराभ्यामेव सूचितम् ॥
—शाकुन्तल

एक [दाता का] हाथ ऊँचा रहता है और एक [याचक का] हाथ नीचा रहता है। ऊँचा-नीचा रहकर हाथों ने दाता और याचक का भेद दिखला दिया कि दाता ऊँचा और याचक नीचा है।

८. न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डित ।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन, न दाता चार्थदानत ॥
इन्द्रियाणां जये शूरो, धर्मं चरति पण्डित. ।
हितप्रियोक्तिभिर्वक्ता, दाता सम्मानदानत ॥
—व्यासस्मृति ४।५९-६०

रणांगण में जीतने से शूर नहीं होता, पढ़ने से पण्डित नहीं होता, बोलने

में निपुण होने से वक्ता नहीं होता और धन देने से दाता नहीं होता ॥५९॥

इन्द्रियों के जीतने से शूर होता है, धर्माचरण से पण्डित होता है, हितकारी प्रियवचन बोलने से वक्ता होता है और दूसरों को सम्मान देने से दाता होता है ॥६०॥

९. स दाता महान्, यस्य नास्ति प्रत्याशोपहतं चेतः ।

—नीतिवाक्यामृत १।७।६

वह दाता महान् है—जिसका मन प्रत्याशा से आहत नहीं है ।

१०. उत्तमोऽप्रार्थितो दत्ते, मध्यमः प्रार्थितः पुनः ।
याचकैर्याच्यमानोऽपि, दत्ते न त्वधमाधमः ॥

—[illegible], पृष्ठ, ८

उत्तम बिना मांगे देता है, मध्यम मांगने पर देता है किन्तु जो अधमाधम है, जो मांगने पर भी नहीं देता ।

११. अदाता-पुरुषस्त्यागी, धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये, न मृतोऽप्यर्थं मुञ्चति ॥

—[illegible] ४।२१

[illegible]

१२. [illegible]

—[illegible]

[illegible]

२५ दाता के उदाहरण

१. (क) राजा कर्ण ने महल को तुड़वाकर चन्दन का दान दिया एवं मरते समय अपने दाँतों को तोड़कर सोने का दान दिया। श्री कृष्ण ने उनकी प्रशंसा की।

(ख) एक बार इन्द्र ब्राह्मणरूप से कर्ण के पास पहुँचे एवं उससे कवच एवं कुण्डल माँगे, जो उसे सूर्य से प्राप्त हुए थे तथा उसके प्राण थे। दाता कर्ण ने प्रसन्नतापूर्वक दे दिये। —महाभारत वनपर्व

२. भामाशाह ने अपने देश के लिए महाराणा प्रताप को इतना धन दिया, जिससे १२ वर्ष तक पच्चीस हजार मनुष्य भोजन कर सकते थे।

३. जगड़ूशाह पर्दे के पीछे बैठ कर दान देता था। राजा वीसलदेव वेष बदल कर आया, हस्तरेखा से राजा समझ कर रत्नों की दो अंगूठियाँ दान में दी।

४. पण्डित ने चन्दन के बदले भगत के मिट्टी का तिलक लगाते हुए कहा—गंगाजी की मृत्तिका चन्दन करके मान।
तब भगत ने दक्षिणा में मेंढकी देते हुए कहा—गंगाजी की मेंढकी, गऊ करके जान।
तात्पर्य यह कि पण्डित जैसा तिलक लगायेंगे, यजमान वैसी ही तो दक्षिणा देंगे।

५. जयपुरपति महाराजा मानसिंह काबुल को जीत कर लंका पर चढ़ाई करने लगे, तब एक कवि ने कहा—

रघुपति दीन्हों दान, विप्र विभीषण जानकें।
मान महीपति मान! दियो दान किम लीजिए?

यह दोहा सुनकर महाराज ने लंका जाना स्थगित कर दिया।

१. दान की व्याख्या—

(क) स्वपरोपकारार्थं वितरणं दानम्।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ७।१७

अपने एवं पराये उपकार के लिए देने का नाम दान है।

(ख) अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।

—तत्त्वार्थसूत्र ७।३३

अनुग्रहार्थ वस्तु का त्याग करना दान है।

२. दान के भूषण—

आनन्दाश्रूणि रोमाञ्चं, बहुमानं प्रियं वचः।
किञ्चानुमोदना पात्रे, दानभूषणपञ्चकम्॥

दान के पांच भूषण हैं—(१) देते समय हर्ष के आंसू आना, (२) रोमांच होना, (३) पात्र का बहुमान करना, (४) मीठी वाणी बोलना, (५) सत्पात्र की अनुमोदना करना।

३. दान के दोष—

अनादरो विलम्बश्च, वैमुख्यं विप्रियं वचः।
पश्चात्तापश्च पञ्चामी, सद्दानं दूषयन्त्यमी॥

दान के पांच दोष हैं—(१) अनादर, (२) विलम्ब, (३) विमुखता, (४) अप्रियवचन, (५) दान देकर पश्चात्ताप करना।

४. दान [illegible] है।

—[illegible]

दान की महिमा

१. पृथिव्यां प्रवरं दानम्।

—उपदेशतरंगिणी

इस पृथ्वी में दान सर्वोत्तम कार्य है।

२. तीन सद्गुण हैं—आशा, विश्वास और दान—इन तीनों में दान सबसे बढ़कर है।

—बाइबिल

३. तपः परं कृतयुगे, त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहु—र्दानमेकं कलौ युगे॥

—मनुस्मृति १।८६

सत्ययुग में तप, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापरयुग में यज्ञ और कलियुग में दान उत्कृष्ट माना गया है।

४ नास्ति दानात् परं मित्र-मिह लोके परत्र च।

—अत्रिसंहिता

इस लोक और परलोक में दान के समान कोई मित्र नहीं है।

५. दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७२

दान से वैर-विरोध का नाश हो जाता है।

६. दारिद्र्यनाशनं दानं, शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा, भावना भवनाशिनी॥

—चाणक्यनीति ५।११

दान दरिद्रता का, शील दुर्गति का, बुद्धि अज्ञान का और भावना भय का नाश करनेवाली है।

७. पात्रे धर्मनिबन्धनं तदितरे श्रेष्ठं दयाख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्धनं तदितरे वैरापहारक्षमम्।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सम्मानसम्पादकं,
भट्टादौ सुयशस्करं वितरणं न क्वाप्यहो निष्फलम्॥

—सिन्दूरप्रकरण ८१

आशय है कि दान कहीं भी निष्फल नहीं होता। देखो! सुपात्र को देने से धर्म होता है, अन्यों को (गरीबों को) देने से दयालुता को जाहिर करता है। मित्र को देने से प्रेम बढ़ाता है, शत्रु को देने से वैर का नाश करता है, नौकरों को देने से भक्ति पैदा करता है, राजा को देने से सम्मान दिलाता है और चारण-भाटों को देने से यश-कीर्ति फैलाता है।

८. ददं मित्तानि गन्थति।

—सुत्तनिपात १।१०।७

दान से मित्र बनाये जाते हैं।

९. अदन्तदमनं दानं दानं सब्बत्थसाधकं।

—विसुद्धिमग्गो १।३९

दान अदान्त (दमन नहीं किये हुए) का दमन करनेवाला एवं सर्वार्थसाधक है।

१० [illegible] न जानि मन मोरे, [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]॥

—[illegible] पृष्ठ [illegible]

[illegible]
करने से [illegible] है।



२८ दान की प्रेरणा

१. शतहस्तः समाहर ! सहस्रहस्तः संकिर !

—ऋग्वेद ३।२४।५

सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से बांटो ।

२. तुलसी कर पर कर करो, करतल कर न करो ।
जा दिन करतल कर करो, ता दिन मरण करो ।

३. श्रद्धया देयं, अश्रद्धया देयं, श्रिया देयं,
ह्रिया देयं, भिया देयं, संविदा देयम् ।

—तैत्तिरीय-उपनिषद् १।११

श्रद्धा से दान दो, अश्रद्धा से भी दो, अपनी बढ़ती हुई श्री (धनसम्पत्ति) में से दो, श्रीवृद्धि न हो तो भी लोकलाज से दो, भय (समाज तथा अपयश के डर) से दो और संविद् (प्रेम अथवा विवेक बुद्धि) से दो ।

४. कलजुग नहीं करजुग है ।
एक हाथ से ले और दूसरे हाथ से दे ।

—हिन्दी कहावत

५. हाथे ते साथे ।

—गुजराती कहावत

६. देयं भो ! ह्यधने-धनं सुकृतिभिर्नो संचितव्यं सदा,
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदान-भोगरहितं नष्टं चिरात्संचितं,
निर्वाणादिति नैजपादयुगलं घर्षन्त्यहो ! मक्षिकाः ॥

—चाणक्यनीति ११।१८

मधुमक्खियों का कहना है कि पुष्पमालाओं को धन का केवल संग्रह न करके अतिथियों को दे देना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के कारण कर्ण, बलि और विक्रम आदि राजाओं का यश आज तक विद्यमान है। दान-भोग रहित हमारा मधु, जो चिरकाल से संचित था, नष्ट हो गया। इसी दुःख से हम (मधुमक्खियाँ) अपने दोनों पैरों को घिस रही हैं।

७ किं वा धनं नार्थिजनाय यत् स्यात्!
वह धन किस काम का, जो याचकों के काम न हो सके!

८, यदि तुम प्राप्त करना चाहते हो तो बलिदान करना सीखो।

—सुभाषचन्द्र बोस

९. उपार्जितानामर्थानां, त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां, परीवाह इवाम्भसाम्॥

—पञ्चतन्त्र २।१५२

कमाए हुए धन का त्याग करना ही उसकी रक्षा है। जैसे— तालाब के पानी का बाहर निकलना ही उसके बचाव और शुद्धि का कारण है।

१० गौरवं प्राप्यते दानात्, न तु वित्तस्य संचयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां, पयोधीनामधः स्थितिः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

दान देने से गौरव मिलता है, धन का संग्रह करने से नहीं। इसीलिए बादल ऊँचे और समुद्र नीचे रहते हैं।

११. [illegible]
[illegible]

—[illegible], पृष्ठ ७१

[illegible]

१२. सक्कच्चं दानं देथ, सहत्था दानं देथ।
चित्तीकतं दान देथ, अनपविद्ध दान देथ॥

—दीघनिकाय २।१०।५

सत्कारपूर्वक दान दो, अपने हाथ से दान दो, मन से दान दो और ठीक तरह से दोषरहित दान दो।

१३, दिन्नं होति सुनीहितं।

—अंगुत्तरनिकाय ३।५।२

दिया हुआ चिरकाल तक सुरक्षित रहता है।

१४. मच्छेरा च पमादा च, एवं दान न दीयति।

—अंगुत्तरनिकाय १।१।३२

मात्सर्य और प्रमाद से दान नहीं देना चाहिए।

१५. अप्पस्मा दक्खिणादिन्ना, सहस्सेन समं मता।

—अंगुत्तरनिकाय १।१।३२

थोड़े में से जो दान दिया जाता है, वह हजारों लाखों के दान की बराबरी करता है।



दान में विवेक

१. नदद्यात् यशसे दानं, न भयान्नापकारिणे ।
न नृत्यगीतशीलेषु, हासकेषु न धार्मिक ॥

—महाभारत, शांतिपर्व [illegible]

[illegible] दान नहीं देना चाहिए ।

२ [illegible] है ।

—[illegible]

३. [illegible]
[illegible]

—मनुस्मृति [illegible]

[illegible] और [illegible] हो जाता है ।

४ [illegible]

—[illegible]

५. अपना कर्ज न चुकाकर या अपने नौकरों को पूरी नौकरी न देकर दान देना गलत है।

—यालकृत डिमेओनी, PRO. ६४७ (यहूदी धर्मग्रंथ)

६. अनुचित काम करने के लिए एवं अपने स्वार्थ या सुख-सुविधा के लिये दान देना गलत है।

—मिदराश निर्गमन, रब्बा ३१।१८ (यहूदी०)

७. ऐ ईमानवालो! अपने दान को अहसान जताकर या तकलीफ पहुँचाकर बर्बाद मत करो।

—कुरान २।२६४

८. तत् किं दानं यत्र नास्ति सत्कार: ?

—नीतिवाक्यामृत १८।८

वह क्या दान है, जिसमें सत्कार नहीं ?

९. दान वही, जहां पुष्ट अहिंसा।

—आचार्यतुलसी

१०. वृथा दानं धनाढ्येषु।

—चाणक्यनीति ५।१६

धनाढ्यपुरुषों को दान देना वृथा है।

११. अतिदानाद् बलिर्बद्ध:।

—चाणक्यनीति ३।१२

अतिदान से बलि राजा बांधा गया।

१२. दानं हि विधिना देयं, काले पात्रे गुणान्विते।

—दक्षस्मृति ३।२७

गुणवान पात्र को उचित समय में शास्त्रोक्त विधि से दान देना चाहिए।

१३. शक्ति दानं यदं [illegible] किम् ?

—कथासरित्सागर

समय पर दिया हुआ थोड़ा दान भी श्रेष्ठ है। बिना समय बहुत देने से भी क्या है ?

१४. दान में विवेक अत्यन्त आवश्यक है—घी से साधु का पात्र भर गया, फिर डालते गया, फिर भी दाता लालच ही रहा—ऐसे करना भी एक प्रकार से दोष है।

१५. साथ भोजन (दस्तरखान आदि में) देना सरल है, किन्तु साथ कुरबा-पन (कुर्बानी आदि भी) देना कठिन है।

● [illegible] की सेवा में एक बेटानी [illegible] आई। उसने कहा कि आपके पास बहुत धन है "इस गरीब [illegible] को कुछ दें" उन्होंने कहा—'[illegible] घी [illegible] से भिन्न [illegible] है।' कुछ दिन बाद उसका एक [illegible] (मालाबाजार) [illegible] और [illegible] दिये गए।

१६. [illegible]।
[illegible] ॥

—पराशरस्मृति

[illegible] और [illegible] को [illegible] दान [illegible] कहा जाता है।

१७. गरीब और जरूरतमन्द आदमी को भीख देना (दान करना) [illegible] है।

—विनोबा



१. दसदान—

दसविहे दाणे पण्णत्ते, तं जहा—
अनुकंपा संगहे चेव, भये कालुणिएइ य।
लज्जाए गारवेण च, अहम्मे पुण सत्तमे॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काहाइ य कयंति य।

—स्थानांग १०।७४५

भगवान ने दस प्रकार के दान कहे हैं, यथा—(१) अनुकम्पादान, (२) संग्रहदान, (३) भयदान, (४) कारुणिकदान, (५) लज्जादान, (६) गौरवदान, (७) अधर्मदान, (८) धर्मदान, (९) कारीदान, (१०) कृतंतीदान।

२. तीनदान—

दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं, फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं, तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

अदेशकाले यद्दान-मपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं, तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

—गीता, अ० १७

हे अर्जुन ! दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर, प्रत्युपकार न करनेवाले के लिए दिया जाता है वह दान 'सात्त्विक' कहा है। २०।

जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अर्थात् बदले में अपना सासारिक कार्य सिद्ध करने की आशा से अथवा फल को उद्देश्य रखकर दिया जाता है, वह दान 'राजस' कहा गया है। २१।

जो दान विना सत्कार किये अथवा तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य देश, काल मे कुपात्रो के लिए अर्थात् मद्य-मासादि अभक्ष्यवस्तुओ के खानेवालो एवं चोरी-जारी आदि नीचकर्म करनेवालो के लिए दिया जाता है, वह दान 'तामस' कहा गया है। २२।

३ भिक्षुओ! दो दान हैं—भौतिकदान और धर्मदान। (आमिसदानं च धम्मदानं च) इन दोनो मे धर्मदान श्रेष्ठ है।

—अंगुत्तरनिकाय २।१३।१

४. सव्वं दान धम्मदान जिनाति,
सव्वं रसं धम्मरसो जिनाति।

—धम्मपद २४।२१

धर्म का दान, सव दानो से बढकर है। धर्म का रस, सब रसो से श्रेष्ठ है।

५ धर्मदान के तीनरूप हैं—(१) अभयदान, (२) संयतिदान, (सुपात्रदान) (३) ज्ञानदान।



३१ अभयदान

१. दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं ।

—सूत्रकृतांग ६।२३

सब दानों में अभयदान श्रेष्ठ है ।

२. दानं भूताभयस्याहुः, सर्वदानेभ्य उत्तमम् ।

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।३३

प्राणियों को अभयदान देना, सब दानों से उत्तम बताया गया है ।

३. न भूप्रदानं न सुवर्णदानं, न गोप्रदानं न तथान्नदानम् ।
यथा वदन्तीह महाप्रदानं, सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥

—हितोपदेश ४।६१

महापुरुष अभयदान को सर्वोत्तम दान कहते हैं । उसके सामने पृथ्वी, सोना, गौ एवं अन्न का दान नगण्य है ।

४. यो ददाति सहस्राणि, गवामश्वशतानि च ।
अभयं सर्वभूतेभ्यः, सदा तमभिवर्तते ॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २९८।५

जो एक हजार गौ तथा सौ अश्व का दान करता है तथा दूसरा जो समस्त प्राणियों को अभयदान देता है, पर सदा ही और अभयदान करने-वाले में बढ़ा-चढ़ा रहता है ।

५. तपोभिर्यज्ञदानैश्च, वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा।
प्राप्नोत्यभयदानस्य, यद् यत् फलमिहाश्नुते॥
लोके य सर्वभूतेभ्यो, ददात्यभयदक्षिणाम्।
स सर्वयज्ञैरीजानः, प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम्॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।२८-२९

तप, यज्ञ, दान और ज्ञान-सम्बन्धी उपदेश के द्वारा मनुष्य यहाँ जो-जो फल प्राप्त करता है, वह सब उसे केवल अभयदान से मिल जाता है। जो जगत् मे सम्पूर्ण प्राणियो को अभय की दक्षिणा देता है, वह मानो समस्त यज्ञों का अनुष्ठान कर लेता है तथा उसे सब ओर से अभयदान प्राप्त हो जाता है।



३२ सुपात्रदान

१. सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं, सुपात्रे दापयेद्धनम्।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च, क्षिप्तं नैव हि दुष्यति॥

—व्यासस्मृति ४६

सुक्षेत्र एवं सुपात्र में डाला हुआ द्रव्य नष्ट नहीं होता, अतः सुक्षेत्र में बीज बोओ और सुपात्र को दान दो।

२. व्याजे स्याद् द्विगुणं वित्तं, व्यवसाये चतुर्गुणम्।
क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनन्तगुणं भवेत्॥

—उपदेशतरंगिणी

धन ब्याज में दुगुना, व्यापार में चौगुना, खेत में सौगुना और सुपात्र में दिया हुआ अनन्तगुणा होता है।

३. निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम्।

—सिन्दूरप्रकरण ७७

सुपात्र में दिया हुआ पवित्र धन (द्रव्य) मुक्ति लक्ष्मी को देनेवाला होता है।

४. समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा, माहणं वा, फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ?
गोयमा! एगंतसो निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ।

—भगवती ८।६

भगवन् ! श्रमणोपासक यदि तथारूप श्रमण-माहन को प्रासुक-एषणीय आहार देता है तो क्या लाभ होता है ?

गोतम ! वह एकान्त कर्मनिर्जरा करता है, लेकिन किंचिन्मात्र भी पाप नही करता ।

५. देई सुपातर दान, न करे मन अभिमान ।
संसार परत्ति करे ए, शिवनगरी वरे ए ॥

—व्रताव्रत की चौपाई ५।२४

६ भावना फली—

कोटे मे (झालरा पाटण की) एक बहन ने १२ वर्ष तक धोवण की भावना भाई। अचानक भारमलजी स्वामी पधारे, धोवण का व्रत निपजा एव भावना फली ।

(सुपात्रदान के साथ कुपात्रदान भी समझना चाहिए) ।



कुपात्रदान

समणोवासगस्सणं भंते ! तहारूवं असंजय-अविरय-अपडिहय-पच्चक्खायपावकम्मं फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से कावि निज्जरा कज्जइ।

—भगवती ८।६

भगवन ! तथारूप असंयत, अविरत एवं पापकर्म से अनिवृत्त व्यक्ति को प्रासुक, अप्रासुक, एषणीय अथवा अनेषणीय अशन–पान–खादिम–स्वादिम देने से श्रावक को क्या फल होता है ?
हे गौतम ! उसे एकान्त पाप होता है, किसी भी प्रकार की निर्जरा नही होती।

वितीर्य दान तु असंयतात्मने, जन फलं काङ्क्षति पुण्यलक्षणम् ।
वितीर्य वीजं ज्वलिते स पावके, समीहते सस्यमपास्तलक्षणम् ॥

—अमितगति–श्रावकाचार, परिच्छेद ११

असंयतआत्मा को दान देकर जो पुण्यफल की इच्छा करता है, वह जलती हुई अग्नि मे बीज डालकर धान्य उत्पन्न करने की आशा करने-वाला है।

भस्मनि हुतमिवापात्रेष्वर्थव्ययः ।

—नीतिवाक्यामृत १।११

अपात्र मे धन खर्च करना राख मे हवन करने के समान है।

४. कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रो, दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् ।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १५७

कुपात्रदान से प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्र होकर पाप करता है और पाप करके नरक जाता है। इस प्रकार बार-बार दरिद्र एव पापी बनता रहता है।

५. नवार्यपि प्रयच्छेत्तु, बैडालव्रतिके द्विजे।
न बकवृत्तिके विप्रे, नावेदविदि धर्मवित् ।।

—मनुस्मृति ४।१९२

धर्मज्ञपुरुष को बिडालवृत्तिवाले, बकवृत्तिवाले, और वेदो को नही जाननेवाले ब्राह्मण को पानी भी नही पिलाना चाहिए।

६. जो देगा शरीरो को तू माल-दौलत।
गुनहगार होगे वे तेरी बदौलत ।।

—उर्दू शेर

७ सुपात्र दान मुगति रो मारग, कुपात्र सू रुले संसार।

—व्रताव्रत की चौपाई १६।५०

८ अव्रत मे दे दातार, ते किम उतरे भवपार।
छादो इण लोक रो ए, मारग नही मोख रो ए ।।

—व्रताव्रत की चौपाई ५।१६



पात्र-कुपात्र

१. पाकारेणोच्यते पाप, त्रकारस्त्राणवाचकः।
अक्षरद्वयसंयोगे, पात्रमाहुर्मनीषिण ॥१९९॥
न विद्यया केवलया, तपसावापि पात्रता।
यत्र वृत्ती इमे चोभे, तद्धि पात्र प्रकीर्तितम् ॥२००॥

—याज्ञवल्क्यस्मृति १

'पा' पाप का और 'त्र' रक्षण का वाचक है। इन दोनो अक्षरो के सयोग से पात्र को विद्वान् लोग पात्र कहते हैं, अर्थात् जो आत्मा को पाप से बचाता है, वह पात्र है ॥१९९॥

केवल विद्या से या केवल तपस्या से पात्रता नही आती। जिसमे—ये दोनो (विद्या-ज्ञान और तपस्या-चारित्र) होते है, वही पात्र कहा गया है ॥२००॥

२. उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं,
मध्यं व्रतेन रहितं सुदृश जघन्यम्।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं,
युग्मोज्झित नरमपात्रमिद नु विद्धि ॥

महाव्रती-अनगार उत्कृष्टपात्र है, अणुव्रती मध्यमपात्र है, सम्यक्त्वी जघन्यपात्र है, सम्यक्त्वहीन-व्रतधारी "कुपात्र" है और सम्यक्त्व-व्रत दोनो से हीन व्यक्ति अपात्र है।

३. सैव भूमिस्तदेवाम्भः, पश्य पात्रविशेषता।

—याज्ञवल्क्यस्मृति

एक ही भूमि और एक ही पानी होने पर भी नीम और आम मे जो अन्तर है, वह बीजरूप पात्र की ही विशेषता है।

४. पात्रापात्रविवेकोऽस्ति, धेनु-पन्नगयोरिव ।
तृणात्संजायते क्षीरं, क्षीरात्संजायते विषम् ॥

—व्यास

पात्र-अपात्र मे गाय और साप जितना अन्तर है। गाय को खिलाये हुए तृणो से दूध बनता है और साप को पिलाये हुए दूध से जहर बनता है।



३५ ज्ञानदान

१. सर्वेषामपि दानाना, ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

—मनुस्मृति ४।२३३

सभी दानो मे विद्यादान विशिष्ट माना गया है ।

२. दक्षिणा ज्ञानसन्देश ।

—श्रीमद्भागवत ११।१६।३६

ज्ञान का उपदेश देना ही दक्षिणा-दान है ।

३. जं तेहिं दायव्वं, तं दिन्नं जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
दंसण-नाण-चरित्तस्स, एस तिविहस्स उवएसो ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति ११०३

तीर्थंकरो ने जो कुछ देने योग्य था, वह दे दिया है, वह समग्रदान यही है-—दर्शन-ज्ञान और चारित्र का उपदेश ।



कृपण

१ कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति ,
अस्पृशन्नेव वित्तानि, य परेभ्य प्रयच्छति ।

—प्रसङ्गरत्नावलि

कृपण के समान दानी न तो हुआ और न कभी होगा। जो अपने सारे धन को स्वयं न छूता हुआ दूसरो को दे देता है अर्थात् छोडकर मर जाता है।

२. यदधोऽध क्षितौ वित्तं, निचखान मितपच ।
तदधोनिलय गतु, चक्रे पन्थानमग्रत· ॥

—शाकुन्तल

कृपण ने जमीन में जो धन को दाटा है, वह मानो ! अधोलोक मे जाने का रास्ता बनाया है।

३. दृढतरनिबद्धमुष्टे:, कोशनिपन्नस्य सहजमलिनस्य ।
कृपणस्य कृपाणस्य, केवलमाकारतो भेद ॥

—शाकुन्तल

कृपण और कृपाण-तलवार मे केवल एक आकार की मात्रा का अन्तर है, शेष बातो मे दोनो तुल्य हैं—जैसे दोनो की मुष्टि दृढ है। दोनो कोष (खजाना एव खड्ग का घर) मे रहनेवाले हैं एव दोनो ही स्वभाव मे मलिन (काले एव मैले) हैं।

४. कृपणो धनलोभेन, स्वा भार्यां नाभिगच्छति ।
अस्या यो जायते पुत्र:, स मे वित्तं हरेदिति ॥

—सभातरङ्ग

कृपण धनलोभ के वश अपनी स्त्री के पास भी नही जाता। उसको भय रहता है कि इसके पुत्र होगा, वह मेरा धन ले लेगा।

५. यो न ददाति न भुङ्क्ते, सति विभवे नैव तस्य तद् द्रव्यम्।
तृणमय-कृत्रिमपुरुषो, रक्षति शस्यं परस्यार्थे॥

—शाकुन्तल

धन होने पर भी जो दान एवं भोग नही करता, वास्तव मे धन उसका है ही नही। वह तो क्षेत्रस्थित तृणमय पुरुष के समान दूसरो के लिए ही धन-धान्य आदि की रक्षा करता है।

६. यद्ददाति यदश्नाति, तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति, दारैरपि धनैरपि॥

—व्यासस्मृति ४।१७

जो किसी को दान मे दे देता है या जो खा लेता है, वास्तव मे धनिको का वही धन है। मरने के बाद तो उसकी स्त्री एवं धन से दूसरे व्यक्ति ही क्रीडा करते हैं।

७. नवे कदरिया देवलोकं वजन्ति।

—धम्मपद १३।११

कृपण व्यक्ति स्वर्ग मे नही जाते।

८. न देय नोपभोग्य च, लुब्धैर्यद् दु.ख-सञ्चितम्।
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो, मधुहेवार्थविन् मधु॥

—भागवत ११।८।१५

लोभी-कृपण पुरुषो द्वारा दु खपूर्वक सचित (एकत्रित) हुआ धन न तो किसी को दिया जाता है और न उनसे स्वय खाया जाता है। वह तो जैसे मधु-मक्खियो का सचित-मधु मधुहर्त्ता के काम आता है, उसी प्रकार दूसरो के भोग मे आता है।

९. जोड-जोड़ राखी कदे कर तें न चाखी,
ताकी साखी मधुमाखी जैसी दई जमा जानी मे।

रावन रजाई रति मरता न पाई,
लंक कंचन लुटाई धन मिरयो धूलधानी में।
हाथ से न हाली गांठ बांधे से न चाली,
नर केते गए खाली बात सुनी वेदवानी में।
अरे अभिमानी! कहा कहिये कहानी,
देख! बीसल की बीस कोड डूब गई पानी में॥

—भाषाश्लोकसागर

१० द्वावम्भसि प्रवेष्टव्यौ, गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
विद्वांसं चाप्रवक्तारं, धनवन्तमदायिनम्॥

—विदुरनीति १।६६

नहीं बोलनेवाला विद्वान् और दान नहीं देनेवाला धनी—इन दोनों को गले में शिला बांधकर पानी में डुबो देना चाहिए।

११ दिन ऊग्यां दातार, याद करे सारी इला,
सूमां रो संसार, नाम न लेवै नाथिया!

—सोरठा संग्रह

१२ मांगण गया सो मर गया, मरे सो मांगण जाय।
सगलां पहली वो मरे, जो होतां नट जाय॥

१३ कृपण के विषय में पत्नी-पति सम्वाद—

पत्नी—वसती वस्यो न जाणियो, न जाण्यो मांगण महंत।
जम्मा किणविध जाणियो, हूं तनैं पूछूं कंत?
पति—हाथां दियो न हर भज्यो, कियो न सुकृत काय।
बोझा मरती बापडी, वसुधा दियो बताय॥

१४. उदासीन कृपण और उसकी पत्नी—

पत्नी—कहा गांठ से गिर पड्यो, कहा कछु किसको दीन्ह!
पत्नी पूछे सूम से, क्यों पिया! वदन मलीन?
पति—ना कछु गांठ में गिर पड्यो, ना कछु किसको दीन्ह।
देता देख्यो औरनें, तातें वदन मलीन॥

—कबीर

१५. कृपण का चिन्तन—

(क) जामे दो अठन्नी चार पावली दुअन्नी आठ,
आने पुनि तामे सदा सोलह समात हैं।
बत्तीस अधन्नी और चौसठ तो पैसे होत,
एक शत आठ बीस अधेले सुहात है।
दोय शत छप्पन छदाम जामे देखी जात,
पांच शत बारह सु दमडी कहात हैं।
घोर कलिकाल के कराल या समा के बीच,
ऐसो यो रुपइयो भइया! कैसे दियो जात हैं?
—भाषाश्लोकसागर

(ख) छाछ घालतां छाती फाटै, दूध घालणो दोहरो।
दही घालतां माथो दूखै, उत्तर देणो सोहरो॥
—राजस्थानी दोहा

१६. कृपण को 'दकार' से घृणा—

(क) देवता को सुर औ असुर कहे दानव को,
दाई को सुधाय तिया दार को लहत है।
दर्पण को आरसी त्यों दाख को मुनक्का कहे,
दास को खवास आमखास विचरत है।
देवी को भवानी और देहरा को मठ कहै,
याही विधि घासीराम रीति आचरत है।
दाना को चबीना दीपमाला को चिरागजाल।
दंवे के डर कभी दद्दो ना कहत है।

(ख) देहल दूर करो घर की अरु, आवण-जाण करो टकनाले।
चावल-दाल कदे मत राध तूं, शाक सदा हित रांध उबाले।
सूम को पूत कहै सुन कामिनी, मोय रहू बिन ही उजियाले।
जो जग जीवनो चाहे कई दिन, तो दद्दे के नाम दियो मत बाले।
—भाषाश्लोकसागर

(ग) जल डूबूं अगनी जलूं, अहि-मुख आंगली द्यू ।
इतरा मैं कारज करूं, दद्दो नांव न ल्यू ॥

● बावन अक्खर मे वडो, नन्नो सहुनो सार ।
दद्दो तो जाणूं नही, लल्ले अक्सर प्यार ॥

—राजस्थानी दोहे

(घ) चारण कवि ने एक कृपण सेठ को खूब बिरुदाया । खुश होकर कृपण ने कह दिया कि तुम्हे पगडी दूंगा । दूसरे दिन कवि ने ज्योंही पगडी मागी, सेठ ने निम्नलिखित पद्य कहा एवं सारा पासा ही पलट दिया–

पाघ देनी कही सो तो मांगत हो आज ही पै,
आवेगो आषाढ तब बन हु बुवावेंगे ।
होवेगो कपास तब लोढ-पीज कात वुन,
धोवी कोऊ चतुर तापे ऊजरी धुलावेंगे ।
वुगचा में बांध घर रखेंगे कितेक दिन,
आवेगो कसुंबो तब गुलाबी रंगावेंगे ।
हम बांध, पूत बांध पोते-पड़पोते बांध,
पीछे हम वाही पाघ तुमको दिलावेंगे ॥

—भाषाश्लोकसागर



१५ कृपण का चिन्तन—

(क) जामे दो अठन्नी चार पावली दुअन्नी आठ,
आने पुनि तामे सदा सोलह समात हैं।
बत्तीस अधन्नी और चौसठ तो पैसे होत,
एक शत आठ बीस अधेले सुहात हैं।
दोय शत छप्पन छदाम जामे देखी जात,
पाच शत बारह सु दमडी कहात हैं।
घोर कलिकाल के कराल या समा के बीच,
ऐसो यो रुपइयो भइया ! कैसे दियो जात हैं ?

—भाषाश्लोकसागर

(ख) छाछ घालता छाती फाटै, दूध घालणो दोहरो।
दही घालताँ माथो दूखै, उत्तर देणो सोहरो॥

—राजस्थानी दोहा

१६. कृपण को 'दकार' से घृणा—

(क) देवता को सुर औ असुर कहे दानव को,
दाई को सुधाय तिया दार को लहत है।
दर्पण को आरसी त्यों दाख को मुनक्का कहे,
दास को खवास आमखास विचरत है।
देवी को भवानी और देहरा को मठ कहै,
याही विधि घासीराम रीति आचरत है।
दाना को चबीना दीपमाला को चिरागजाल।
देवे के डर कभी दद्दो ना कहत है।

(ख) देहल दूर करो घर की अरु, आवण-जाण करो ढकनाले।
चावल-दाल कदे मत राँध तू, शाक सदा हित राँध उबाले।
सूम को पूत कहे सुन कामिनी, सोय रहू बिन ही उजियाले।
जो जग जीवनो चाहे कई दिन, तो दद्दे के नाम दियो मत बाले।

—भाषाश्लोकसागर

(ग) जल डूबूं अगनी जलूं, अहि-मुख आंगली द्यूं।
इतरा मैं कारज करूं, दद्दो नांव न ल्यूं॥

● बावन अक्खर मे बडो, नन्नो सहुनो सार।
दद्दो तो जाणूं नही, लल्ले अक्खर प्यार॥

—राजस्थानी दोहे

(घ) चारण कवि ने एक कृपण सेठ को खूब विरुदाया। खुश होकर कृपण ने कह दिया कि तुम्हे पगडी दूंगा। दूसरे दिन कवि ने ज्योंही पगडी मागी, सेठ ने निम्नलिखित पद्य कहा एवं सारा पासा ही पलट दिया—

पाघ देनी कही सो तो मांगत हो आज ही पै,
आवेगो आषाढ तब बन हु बुवावेंगे।
होवेगो कपास तब लोढ-पीज कात बुन,
धोबी कोऊ चतुर तापे ऊजरी धुलावेंगे।
बुगचा मे बांध घर रखेंगे कितेक दिन,
आवेगो कमुबो तब गुलाबी रगावेंगे।
हम बांध, पूत बांध पोतें-पड़पोते बांध,
पीछे हम वाही पाघ तुमको दिलावेंगे॥

—भाषाश्लोकसागर



१. तृणं लघु तृणात्तूलं, तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ, मामयं याचयिष्यति ॥

—चाणक्यनीति ६।१५

तृण हलका है, उससे हलका तूल (रुई) है, तूल से भी हलका याचक—मांगने-वाला है। मेरे से कुछ मांग लेगा इस भय से पवन ने भी इसे नहीं उड़ाया।

२. काक आह्वयते काकान्, याचको न तु याचकान् ।
काक-याचकयोर्मध्ये, वरं काको न याचकः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७६

एक काक (कौवा) दूसरे काक को प्रेम से आह्वान करता है, किन्तु याचक—याचक को नहीं, अतः याचक की अपेक्षा काक उत्तम है।

३. भिक्षुको-भिक्षुकं दृष्ट्वा, श्वानवद् गुर्गुरायते ।

—सुभाषितरत्नमंजूषा

भिखारी—भिखारी को देखकर कुत्ते की तरह गुर्गुराने लगता है।

४. कोऽर्थी गतो गौरवम् ?

—पंचतन्त्र १।१५७

कोई भी याचक गौरव को प्राप्त नहीं हुआ ?

५. तावद्गुणा गुरुत्वं च, यावन्नार्थयते परम् ।
अर्थी चेत् पुरुषो जातः, क्व गुणाः क्व च गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७४

वही तक गुणियो के गुण हैं और वही तक गुरुओ का गौरव है, जहाँ तक वे दूसरो के पास नही मागते। मागने पर गुण और गौरव दोनो नष्ट हो जाते हैं।

६ स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो य—
दास्यं भजेद् मलिनता किमिद, विचित्रम्।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधे पयोऽपि,
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७७

धनिकों से अपने लिए धन लेते समय लेनेवाले के मुख पर कालिमा छा जाती है, इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। दूसरो के लिए समुद्र का जल लेने पर भी देखो! यह मेघ काला हो जाता है।

७ एहि गच्छ! पतोत्तिष्ठ! वद! मौनं समाचर!
एवमाशाग्रहग्रस्तै, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभि॥

—हितोपदेश २।२४

इधर आजा, चला जा, बैठ जा, खड़ा हो जा, बोल, चुप हो जा! आशारूप ग्रह मे ग्रसित याचको के साथ धनिक लोग—ऐसे खेलते रहते हैं।

८. **याचक की प्रभु से प्रार्थना—**
हे करतार करू अरजी अब, भूल लिखो मत काहू के टोटो।
ऐसो ललाट लिखे मत काहु के, मागन जाय महीपति मोटो॥
तू अपनो वृध जानत है प्रभु! मागन ने कछु और न खोटो।
तू बलि के जब द्वार गयो तब, बावन आगल हो गयो छोटो॥

—मायाइमोकसागर

९. मगने न कोई गन्नो छानी कोनी।
● हे लायो माग-ताग, तू नै गधे री टाग।

—राजस्थानी कहावतें

१०. अद्‌भुत भिखारी—वि. सं. २००४ की बात है, विलेपारला (बम्बई मे हम एक दिन बाहर जा रहे थे। रैंडी मे बैठा हुआ एक अपाहिज मिला। जिसके हाथ-पैर नाक-कान कटे हुए थे। लँगोटी पहनी हुई थी एवं मुह मे सिगरेट थी। रैंडी खीचनेवाला व्यक्ति कह रहा था, अपाहिज को कुछ दो, बड़ा पुण्य होगा। देखकर आश्चर्य हुआ और स्थानीय भाइयो से पूछा तो पता लगा कि गुंडो-बदमाशो की एक टोली है। उसका काम यही है कि बच्चो को उडाकर विक्षतांग बना लेना और उनके सहारे दुनिया को ठग खाना। सुबह से शाम तक पचासों रुपये इकट्‌ठे कर लेते हैं। अपाहिज को केवल रोटी-सिगरेट आदि मिलते हैं। शेष रुपये बदमाशो की टोली हजम कर जाती है।

— धनमुनि



१. सेवेव मानमखिलं, ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरि-हरकथे व दुरितं, गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥
—हितोपदेश १।१३९

जैसे—सेवा स्वाभिमान को, चान्दनी अन्धकार को, बुढापा खूबसूरती को और हरि-हर की कथा सब पापो को हरती है, वैसे ही याचना सैकडो गुणो को हर लेती है।

२ विशाखान्ता गता मेघा', प्रसवान्तं हि यौवनम् ।
प्रणामान्तः सतां कोपो, याचनान्तं हि गौरवम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६३

जैसे विशाखा नक्षत्र के बाद मेघ, प्रसव के बाद स्त्रियों का यौवन और प्रणाम के बाद सत्पुरुषो का क्रोध नष्ट हो जाता है, वैसे ही किसी से कुछ मागने के बाद गौरव नष्ट हो जाता है।

३ लघुत्वमूलं हि किमर्थितैव, गुरुत्वमूलं यदयाचनं च ।
—शङ्कर-प्रश्नोत्तरी १८

लघुता का मूल क्या है ? मागना ।
गुरुता का मूल क्या है ? नहीं मागना ।

४. बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को वासो ।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सो हासो ।
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनीघर भाई ।
बुरी कुलच्छनि नार, सास घर बुरो जमाई ।

१०. अद्भुत भिखारी—वि. स. २००४ की बात है, विलेपारला (बम्बई मे हम एक दिन बाहर जा रहे थे। रैंडी मे बैठा हुआ एक अपाहिज मिला। जिसके हाथ-पैर नाक-कान कटे हुए थे। लँगोटी पहनी हुई थी एव मुह मे सिगरेट थी। रैंडी खीचनेवाला व्यक्ति कह रहा था, अपाहिज को कुछ दो, बड़ा पुण्य होगा। देखकर आश्चर्य हुआ और स्थानीय भाइयो से पूछा तो पता लगा कि गुंडो-बदमाशो की एक टोली है। उसका काम यही है कि बच्चो को उडाकर विक्षतांग बना लेना और उनके सहारे दुनिया को ठग खाना। सुबह से शाम तक पचासों रुपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपाहिज को केवल रोटी-सिगरेट आदि मिलते हैं। शेष रुपये बदमाशो की टोली हजम कर जाती है।

— धनमुनि



१. सेवेव मानमखिल, ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरि-हरकथे व दुरित , गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥
—हितोपदेश १।१३६

जैसे—सेवा स्वाभिमान को, चान्दनी अन्धकार को, बुढापा खूबसूरती को और हरि-हर की कथा सब पापो को हरती है, वैसे ही याचना सैकडो गुणो को हर लेती है ।

२ विशाखान्ता गता मेघा , प्रसवान्त हि यौवनम् ।
प्रणामान्त सता कोपो, याचनान्त हि गौरवम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६३

जैसे विशाखा नक्षत्र के बाद मेघ, प्रसव के बाद स्त्रियों का यौवन और प्रणाम के बाद सत्पुरुषो का क्रोध नष्ट हो जाता है, वैसे ही किसी से कुछ मागने के बाद गौरव नष्ट हो जाता है ।

३ लघुत्वमूल हि किमर्थितैव, गुरुत्वमूल यदयाचन च ।
—शङ्कर-प्रश्नोत्तरी १८

लघुता का मूल क्या है ? मागना ।
गुरुता का मूल क्या है ? नही मागना ।

४ बुरो प्रीति को पथ, बुरो जंगल को वासो ।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सो हासो ।
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनीघर भाई ।
बुरी कुलच्छनि नार, सास घर बुरो जमाई ।

बुरो पेट पंपाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
गंग कहे अकबर सुनो! सबसे बुरो है मागनो॥

५. वेपथुर्मलिनं वक्त्रं, दीना वाग् गद्गदस्वरः।
मरणे यानि चिह्नानि, तानि चिह्नानि याचने॥

—व्यास

कंपन, वदन का मलिन होना, दीनतायुक्त वाणी एवं गद्गदस्वर आदि, जो मरण के चिन्ह हैं, याचना करते समय याचक के शरीर में भी वे ही चिन्ह हो जाते हैं।

६. वदनाच्च वहिर्यान्ति, प्राणा याञ्चाक्षरैः सह।
ददामीत्यक्षरैर्दातुः, पुनः कर्णाद् विशन्ति हि॥

—कल्पतरु

याचना के अक्षरों के साथ याचक के प्राण मुंह से बाहर निकल जाते हैं। फिर देता हूं दाता के इन अक्षरों के साथ कानों द्वारा पुनः अन्दर प्रवेश करते हैं।

७. देहीति वचनं श्रुत्वा, हृदिस्था पञ्च देवताः।
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति, श्री-ह्री-धी-शान्ति-कीर्तयः॥

—शार्ङ्गधर

मुझे कुछ दो—ऐसे बोलते ही हृदय में विराजमान श्री—लक्ष्मी, ह्री—लज्जा, धी—बुद्धि, शान्ति-कीर्ति—ये पांचों देवता याचक के मुख से निकल जाते हैं।

८. आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गए, जबहि कहा कछु देह॥

—कबीर

९. धनमस्तीति वाणिज्यं, किंचिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किंचिदस्तीति, भिक्षा नैव च नैव च॥

—व्यास

पर्याप्त धन हो तो वाणिज्य, थोडा धन हो तो खेती एवं धन बिल्कुल ही न हो तो सेवा-नौकरी करनी चाहिए, लेकिन भीख तो कभी नही मागनी चाहिए।

०. मागन-मरन समान है, मत कोई मागो भीख।
मांगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१॥

मर जाऊ मांगू नही, अपने तन के काज।
पर कारज के कारणे, मांगत मोहि न लाज ॥२॥

बिन मांगे सो दूध बराबर, मांगे मिले सो पानी।
कहे कबीर सो रक्त बराबर, जामे खीचातानी ॥३॥

—कबीर

११. अणमांग्या मोती मिलैं, मांगी मिले न भीख।

—राजस्थानी कहावत

१२. हर एक के पास मत मांग—

(क) याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत

गुणिजनो के समीप निष्फल मागना भी अच्छा है, एव अधमजनो से सफल मागना भी बुरा है।

(ख) आप तो अतीतदास बाप तो फकीरदास,
दादो है दिगम्बरदास भिखारीदास भाई है।
काको है कगालदास मामो है मंगतदास,
नानो है निरजनदास जोगीदास जमाई है।
पुत्र तो लफदरदास, मित्र है कनदरदास,
सालो है जलंदरदास ऐसी ही वड़ाई है।
ताके पास जावे कुछ मांगिवे की आस करी,
आस तो गई पै लाज गांठ की गमाई है।

—मायादलोकसागर

(ग) रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता—
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपिः नैतादृशा. ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणी गर्जन्ति केचिद् वृथा,
य यं पश्यसि तस्य-तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीन वचः ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक ५१

अरे मित्र चातक ! आकाश मे अनेक मेघ निवास करते हैं, वे सभी वरसनेवाले नही हैं। कई तो वृष्टि से पृथ्वी को गीली करते हैं एव कई व्यर्थ ही गर्जना करते हैं, अत. मेरी वात सुन और हर एक के सामने दीनवचन मत बोल !

१३. किसने क्या मांगा ?

सासू माँग्यो वोलणो, वहुवर माँगी चुप ।
करसणी माँग्यो वरपणो, धोवी माँगी धुप ।

—राजस्थानी दोहा



तीसरा कोष्ठक

१ धन

१ यन सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः ।

—नीतिवाक्यामृत २।१

जिसमे सब प्रयोजनो की सिद्धि हो, वह अर्थ (धन) है ।

२. अलब्धकामो, लब्धपरिरक्षण,
रक्षित परिवर्धनं चार्थानुबन्ध. ।

—नीतिवाक्यामृत २।३

अर्थ के तीन अनुबन्ध अर्थात् किये जानेवाले काम हैं—(१) अप्राप्त की कामना, (२) प्राप्त की रक्षा, (३) रक्षित को बढाना ।

३ अर्थस्य पुरुषो दासो, दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।

—महाभारत-भीष्मपर्व

मनुष्य धन का दास है किन्तु धन किसी का दास नही ।

४. अर्थैषणा व्यसनेषु न गण्यते ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

धन की गवेषणा व्यसनो मे नही गिनी जाती ।

५. को न तृप्यति वित्तेन ?

—सुभाषितरत्नखण्डमजूषा

धन से कौन तृप्त नही होता ?

६. दुन्दुभिस्तु सुतरामचेतन—स्तन्मुखादपि धन-धन-धनम् ।
इत्थमेव निनद प्रवर्तते, कि पुनर्यदि जन सचेतन. ।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

अचेतन दुन्दुभि के मुख से भी धन-धन-धन ऐसा शब्द निकलता है, तो फिर सचेतन मनुष्य धन-धन की रटना लगाये—इसमे क्या आश्चर्य है ?



२ धन की भूख

१. जातिर्यातु रसातलं गुणगणास्तस्याप्यधोगच्छता—
च्छीलं शैलतटात् पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणी वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक-३९

चाहे जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से नीचे चले जायें, शील पर्वत से गिर कर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि में जलकर भस्म हो जायें और वैरी-शौर्य पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हमारा धन नष्ट न हो, हमें तो केवल धन चाहिए, क्योंकि धन के बिना मनुष्य के सारे ही गुण तिनके की तरह निकम्मे है।

२. बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

भूखे व्याकरण नही खाया करते, प्यासे काव्यरस नही पिया करते तथा वेद से किसी ने कुल का उद्धार नही किया, अतः धन का ही अर्जन करो ! दूसरे सारे गुण निष्फल हैं।

३. न दुनियां के हो काम धन के बगैर,
न मुर्दा भी उठता कफन के बगैर।
मिले जर से कुव्वत औ जर से तमीज,
खजाने हैं जिसके वही है अजीज॥

—उर्दू शेर

४. वसु विना नो पशु, लक्ष्मी विना नो लपोड अनें गरथ विना नो गांगलो।

—गुजराती कहावत

५ धन जाय तिणरो ईमान जाय।

—राजस्थानी कहावत

६. काका मामा गावाना, पासे होय ते खावाना।

—गुजराती कहावत



३ धन का प्रभाव

१. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥
—भर्तृहरिनीतिशतक ४१

जिसके पास धन है—वस्तुतः वही कुलवान है, वही पण्डित है, वही ज्ञानी है, वही गुणज्ञ है, वही वक्ता है और वही दर्शनीय है। सारे गुण धन के आश्रित रहा करते हैं।

२. पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि, स प्रभावो धनस्य च ॥
—पञ्चतंत्र १।७

जो अपूज्य पूजा जाता है, अगम्य मे गमन किया जाता है और अवन्दनीय को वन्दना की जाती है—वह सारा धन का ही प्रभाव है।

३. धनैर्निष्कुलीना कुलीना भवन्ति, धनैरापद मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके, धनान्यर्जयध्वं-धनान्यर्जयध्वम् ॥
—नीतिसार

धन से अकुलीन, कुलीन बन जाते हैं। धन से मनुष्य आपत्ति को पार कर देते है। संसार मे धन के समान दूसरा कोई भी स्वजन नहीं है, अत धन का उपार्जन करो! धन का उपार्जन करो!!

४. धन से बड़े-बड़े पापो पर पर्दा पड जाता है।
—प्रेमचन्द

५. धन भाग्य की गठडी है।
—हिन्दी कहावत

६ हुवै पाताल-तपै लिलाड ।
● ढेढणी काँई बोले है जमी मार्योलो बोले है ।

—राजस्थानी कहावतें

७ जिह्दी कोठी दाने, ओहदे कमले त्रि सियाने ।

—पंजाबी कहावत

८ खिस्सा तर तो चाहे सो कर ।
● गाँठे होय धन, सौ हाजर जन ।
● सकर्मी नाँ साला घणा, लीला वन नाँ सूडा घणा ।

—गुजराती कहावतें

९. माया थाँरा तीन नाम, फरसो, फरसू, फरसराम ।

—राजस्थानी कहावत

१०. अवला भक्त—यह एक दिन मैले कपड़ो से मन्दिर में दर्शनार्थ गया किन्तु उसे अन्दर नही जाने दिया। दूसरे दिन बन-ठन कर गया। लोगों ने कहा—आइये! अन्दर आकर दर्शन कर लीजिए। भक्त ने अन्दर जाकर अपने आभूषण आदि मूर्ति के सामने रख दिये और कहने लगा—करो भाई भगवान के दर्शन, तुम्हारी ही पूछ है।

११. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—इनको लार्ड हेस्टिंग की तरफ से चार घोड़ो की बग्घी वख्शी हुई थी। ये राज्य-सभा के मेम्बर थे। एक बार 'दीगापतिया नरेश' के निमंत्रण पर ये सादी पोशाक मे पैदल ही चले गये। अन्दर नही घुसने दिये, फिर बग्घी चढकर ठाठ-बाट से गये, सब खड़े होकर उनके पैरो पड़ने लगे तब उन्होंने कहा—"मेरे नही घोड़ो के पैर पकड़ो।"

१२. चून्हा फूंकनियाँ—निर्धन भाई को माँ-जाई बहन ने 'चून्हा फूंकनियाँ' कहा। फूटी हांडी मे ठंडी रोटी और खट्टी छाछ खाने को दी। फिर धनी बनकर आया तो पाँचो पकवान परोसे। भाई ने म्यारो-मोहरो-मोरो-पन्नो के थाल भरकर रखते हुए कहा—लो भाई! बहिन के पकवान खाओ। बहिन लज्जित हुई।



धन का उत्पादन

१. न क्लेशेन विना द्रव्यम् ।

—दक्षस्मृति

कष्ट सहे विना धन नहीं मिलता ।

२. विद्या उद्यम बुद्धि बल, रूप तथा संयोग ।
षट्कारण धन लाभ के, जानत है सब लोग ॥

—पं. श्रद्धारामजी

३ सप्त वित्तागमा धर्म्या, दायो लाभः क्रयो जय ।
प्रयोगः कर्मयोगश्च, सत्प्रतिग्रह एव च ॥

—मनुस्मृति १०।११५

धन की प्राप्ति के सातमार्ग धर्मयुक्त हैं—(१) दाय—पिता आदि का धन, (२) लाभ, (३) क्रय—व्यापार से प्राप्त, (४) जय—युद्ध मेंप्राप्त, (५) प्रयोग—व्याज मे प्राप्त, (६) कर्मयोग—खेती आदि मे प्राप्त, (७) सत्प्रतिग्रह—अच्छे दाता से दान मे प्राप्त ।

४. यथा मधु समादत्ते, रक्षन् पुष्पाणि षट्पद ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य, आदद्यादविहिंसया ॥

—विदुरनीति २।१७

जैसे-भौंरा पुष्पो को नष्ट किये विना उनमे से मधुग्रहण कर लेता है, वैसे धन के मूलसाधन को नष्ट किए विना उसमे से धन ग्रहण करना चाहिए ।

५ धन का उपयोग

१. धन उसका नही, जिसके पास है, बल्कि उसका है, जो उसका उपयोग करता है।

—फ्रैंकलिन

२. धन और विद्या का उपयोग नही करनेवालो ने व्यर्थ कष्ट उठाया।

३. जिसने धन से यश कमाया और भोगा वह भाग्यवान और जिसने धन कमाया और छोडकर मर गया वह भाग्यहीन।

४. उत्तम स्वार्जितं भुक्तं, मध्यम पितुरर्जितम्।
कनिष्ठ भ्रातृवित्तं च, स्त्रीवित्तमधमाधमम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६६

अपना कमाया धन खाना उत्तम है, पिता का कमाया हुआ खाना मध्यम है, भाई का धन खाना अधम है और स्त्री का धन खाना अधमाधम है।

५. दान भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

—पञ्चतन्त्र २।१५७

धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। जो व्यक्ति न तो किसी को देता एवं न स्वयं खाता-पीता, उसके धन की तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।

६ दातव्य भोक्तव्यं, धनविषये संचयो न कर्तव्य।
पश्येह मधुकरीणा, सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये॥

—पञ्चतन्त्र २।१४४

धन का दान एव उपभोग करना चाहिए, किन्तु सग्रह नही। देखो! मधुमक्खियो का सचितधन (मधु) दूसरे लोग हर लेते हैं।

७. त्यागाय श्रेयसे वित्त मवित्त सचिनोति य.।
स्वशरीर स पङ्केन, स्नास्यामीति विलम्पति ॥

—इष्टोपदेश-१६०

जो दान और पुण्य के लिए धन का सचय करता है, वह फिर नहा लूंगा—ऐसे सोचता हुआ अपने शरीर को कीचड से लिप्त करता है।

८. मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—माया के मालिक और माया के गुलाम। मालिक माया मे आसक्त नही होते एवं उसके लिए अन्याय नही करते। गुलाम माया मे फँस जाते हैं एवं उसके लिए अन्याय करते नही डरते।

६. महाजन को धन रोडा में, ठाकर को धन घोडा मे।

—राजस्थानी कहावत



६ धन का खजाना (अमेरिका में)

समुद्र की सतह से ४० फुट नीचे एव न्यूयार्क व्यापारी वस्ती से ७० फुट नीचे स्वतन्त्र ससार का सबसे वडा स्वर्ण-भण्डार है, जिसमे १२ ५३ अरव डालर मूल्य का सोना मकान वनाने की ईटो के आकार मे सुरक्षित है। प्रत्येक ईट २७-२८ पौंड वजन एव १४ हजार अमरीकी डालर मूल्य की है। इसके सिवा ६ ५ अरव डालर सोना फोर्ट नोक्स (कैण्टकी) मे एव ११ ८ अरव डालर सोना टकसालो व धातुविश्लेषक कार्यालयो मे है। यह सारा सोना विदेशी सरकारो, वैंको व अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं का है। इसे कोई खरीद नही सकता।

—हिन्दुस्तान, १८ मार्च १९६८



७ धन के विविधरूप

(क) रुपया—

१. संतदास संसार में, रुपियो बडी रसाण।
अणजाण्या जाण्या बणै, पडदै पडै पिछाण॥
संतदास संसार में, कै रुपियो के राम।
वो दाता है मुगतरो, वो सारै सब काम॥

२. कर मैं हुवै कलदार, मन चाह्या लूंटो मजा।
दुनिया मे दिलदार, चेहराशाही चकरिया!

—सोरठा-संग्रह

३. दाम करै काम, दुनियां करै सलाम।

- रुपिया हुवै जद टट्टू चालै—
- रूपली पल्लै, जद रोही मे चल्लै।
- रूपली हुवै जद, शोभनी आपे ही आय जावै।
- रूपलालजी गुरु और सब चेला।

—राजस्थानी कहावतें

४. जेब मे हो नगदुल्ला, नाचे बेटा अब्दुल्ला।

—हिन्दी कहावत

५ नगद नाणो, बीद परणीजै काणो।

- हुआ सो, भागा भौ। हुआ हजार, फिरो बजार।

—राजस्थानी कहावतें

६. पांचे मित्र, पच्चीसे पडोसी नें सोए सगो।

—गुजराती कहावत

७. भज कलदारं-भज कलदारं-भज कलदारं मूढमते !

—संस्कृत कहावत

८. रुपियं कनै रुपियो आवै।

—राजस्थानी कहावत

जाट के पास एक रुपया था, इधर टकसाल में रुपयों के ढेर लग रहे थे। इसने सुन रखा था कि रुपयों के पास रुपया आता है। जाट ने अपना रुपया उन्हें दिखाया। वह अकस्मात् हाथ से छूट कर टकसाल के रुपयों के पास चला गया। जाट देखता ही रह गया।

९. भरे ही को भरती है दुनियां मदाम।
समंदर को जाते हैं दरिया तमाम॥

—उर्दू शेर

१०. रुपियो हाथ रो मैल है।

—राजस्थानी कहावत

११. खरी कमाई का रुपया—मारवाड़ के एक राजपूत ने दिल्ली के बादशाह के यहां नौकरी की। बारह वर्ष बाद उसे एक रुपया मिला। उसने उससे चार अनारें खरीदीं और उन्हें बच्चों के लिए घर भेज दिया। वे चार लाख में बिकीं। एक वर्ष बाद स्वदेश जाते समय नौकरी मांगने पर उसे खजाने से एक रुपया मिला और वह रास्ते में ही खर्च हो गया। विस्मित राजपूत ने बादशाह से भेद पूछा। उत्तर मिला कि पहला रुपया पसीने की कमाई का था (मैंने चालीस दिन लोहा कूट कर कमाया था) और दूसरा रुपया प्रजा से छीनकर लिया हुआ था।

(ख) पैसा—

१. पैसा पाप का मूल है, फिर भी विनिमय का साधन है, आवश्यकता का पूरक है, वेइज्जती व अकस्मात् घात का नाशक है, मान-प्रतिष्ठा का दायक है, आश्रमादि—लोकोपकारी प्रवृत्तियों का संचालक है, महान् युद्धों का उपशामक है, भोग-विलास की इसके बिना अशक्यता है तथा हाथ का मैल होने पर भी करोड़ों हाथ इसके लिए दौड़ रहे हैं।

—पैसे के प्रशंसक

२. पैसा बना मनुज के कर से, आज वही भगवान हो गया।
क्रय करता मानव का पैसा, उस ही का सम्मान हो गया।
गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
कहाँ गया वह रामराज्य, यह देखो रावणराज्य हो गया।

—हिन्दी कविता

३. "तुलसी" इस संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग लाखों यार॥

४. पैसा जग में प्राण, पैसो ही जग में प्रभु।
पैसो रो सम्मान चिहु दिशि होवै 'चकरिया'।

—सोरठा-संग्रह

5. Money my God, woman my guide
मनी माई गॉड वुमन माई गाइड —अंग्रेजी कहावत
पैसा मेरा परमेश्वर और स्त्री मेरी अगुआ।

६. कठैई जावो पइसै री खीर है।

● तांबे की मेख, तमाशा देख॥ —राजस्थानी कहावतें

७. पैसे बिन तात कहे, पूत है कपूत मेरो,
पैसे बिन मात कहे मोहि दुखदायी है।
पैसे बिन काका कहे, कौन को भतीज तीज,
पैसे बिन मामू कहे कौन को जमाई है॥

पैसे बिन नारी घरवारी घुर्राट करे
पैसे बिन यार-दोस्त आंख ही छिपाई है।
कहे कवि "देवीदास", याही जग साची भाप,
कलियुग के वर्तमान पैसे की बडाई है॥

८. जिसके पास नही है पैसा।
जग मे उसका जीवन कैसा ? —हिन्दी पद्य

९ पैसादार नी वकरी मरी ते बधा गामे जाणी।
गरीबनी छोकरी मरी ते कोई ए न जाणी।

—गुजराती कहावत

१० पैसे की कीमत भिखारी बनकर मागने मे जानी जाती है।

११. पैसा मा कोई पूरो नही, अक्कलमा कोई अधूरो नहिं।

—गुजराती कहावत

१२ किसी भी कार्य का ध्येय पैसा नही होता, लेकिन अज्ञानवश लोग मान बैठे हैं। ज्ञान से देखें तो सरकार का ध्येय प्रजा का रक्षण करना है, माता-पिता का ध्येय सतान-पालन है, न्यायाधीश का ध्येय न्याय करना है, वकील का ध्येय न्यायी को बचाना है, डाक्टर-वैद्य-हकीमो का ध्येय रोगियो को स्वस्थ बनाना है, शिक्षको का ध्येय अशिक्षितो को शिक्षित बनाना है, लोकमान्यतिलक तथा महात्मागाधी जैसे महापुरुषो का ध्येय देश को सुखी और स्वतन्त्र करना था, किन्तु पैसे मे घर भरना नहीं।

—संकलित

१३ न्याय-अन्याय का पैसा—
अब्बु अब्बासा एक टोपी सीकर एक पैसा पैदा करता था। दूसरा मित्र अन्याय मे धन कमाता था। एक दिन उसने अन्धे को एक मोहर दी, अन्धे ने शराब पीकर रंडीबाजी की। प्रथम ने दाना-दक्षी खानेवाले गरीब को एक पैसा दिया। उसने साग खाना छोड़ा, चनो से निर्वाह किया, बुद्धि सुधरी। कारण न्याय का पैसा था।

(ख) पैसा—

१. पैसा पाप का मूल है, फिर भी विनिमय का साधन है, आवश्यकता का पूरक है, वेइज्जती व अकस्मात् घात का नाशक है, मान-प्रतिष्ठा का दायक है, आश्रमादि—लोकोपकारी प्रवृत्तियो का सचालक है, महान् युद्धो का उपशामक है, भोग-विलास की इसके विना अशक्यता है तथा हाथ का मैल होने पर भी करोडो हाथ इसके लिए दौड रहे हैं।

—पैसे के प्रशसक

२. पैसा वना मनुज के कर मे, आज वही भगवान हो गया।
क्रय करता मानव का पैसा, उस ही का सम्मान हो गया।
गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
कहाँ गया वह रामराज्य, यह देखो रावणराज्य हो गया।

—हिन्दी कविता

३. "तुलसी" इस ससार में, मतलव का व्यवहार।
जव लग पैसा गाँठ मे, तव लग लाखो यार॥

४. पैसा जग में प्राण, पैसो ही जग मे प्रभु।
पैसो रो सम्मान चिहु दिशि होवै 'चकरिया'।

—सोरठा-संग्रह

5. Money my God, woman my guide

मनी माई गॉड वुमन माई गाइड —अंग्रेजी कहावत

पैसा मेरा परमेश्वर और स्त्री मेरी अगुआ।

६. कठैई जावो पइसै री खीर है।

● तांवै की मेख, तमासा देख॥ —राजस्थानी कहावतें

७. पैसे विन तात कहे, पूत है कपूत मेरो,
पैसे विन मात कहे मोहि दुखदायी है।
पैसे विन काका कहे, कौन को भतीज तोज,
पैसे विन मामू कहे कौन को जमाई है॥

पैसे बिन नारी घरवारी घुर्राट करे
पैसे बिन यार-दोस्त आंख ही छिपाई है।
कहे कवि "देवीदास", याही जग साची भाप,
कलियुग के वर्तमान पैसे की बडाई है॥

८ जिसके पास नही है पैसा।
जग मे उसका जीवन कैसा? —हिन्दी पद्य

९ पैसादार नी बकरी मरी ते बधा गामे जाणी।
गरीबनी छोकरी मरी ते कोई एन जाणी।

—गुजराती कहावत

१० पैसे की कीमत भिखारी बनकर मागने से जानी जाती है।

११. पैसा मां कोई पूरो नहीं, अक्कलमा कोई अधूरो नहिं।

—गुजराती कहावत

१२. किसी भी कार्य का ध्येय पैसा नही होता, लेकिन अज्ञानवश लोग मान बैठे हैं। ज्ञान से देखें तो सरकार का ध्येय प्रजा का रक्षण करना है, माता-पिता का ध्येय संतान-पालन है, न्यायाधीश का ध्येय न्याय करना है, वकील का ध्येय न्यायी को बचाना है, डाक्टर-वैद्य-हकीमो का ध्येय रोगियों को स्वस्थ बनाना है, शिक्षकों का ध्येय अशिक्षितो को शिक्षित बनाना है, लोकमान्यतिलक तथा महात्मागांधी जैसे महापुरुषो का ध्येय देश को सुखी और स्वतंत्र करना था, किन्तु पैसे से घर भरना नही।

—संकलित

१३ न्याय-अन्याय का पैसा—

बन्धु अब्बास एक टोपी सीकर एक पैसा पैदा करता था। दूसरा मित्र अन्याय से धन कमाता था। एक दिन उसने अन्धे को एक मोहर दी, अन्धे ने शराब पीकर रंडीबाजी की। प्रथम ने चना-दाली खानेवाले गरीब को एक पैसा दिया। उसने मांस खाना छोडा, चनों से निर्वाह किया, बुद्धि सुधरी। कारण न्याय का पैसा था।

(ग) चौदह रत्न—

१. एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंत चक्कवट्टिस्स चउदस्स रयणा पन्नत्ता, तं जहा—

इत्थीरयणे, सेणावइरयणे, गाहावइरयणे, पुरोहियरयणे, वड्ढइरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे, असिरयणे, दण्डरयणे, चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, मणिरयणे, कागिणिरयणे।

—समवायांग १४

जैन सिद्धान्तानुसार प्रत्येक चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न होते हैं। उनके नाम—(१) स्त्रीरत्न (२) सेनापतिरत्न (३) गाथापतिरत्न (४) पुरोहित-रत्न (५) वर्द्धकिरत्न (६) अश्वरत्न (७) हस्तिरत्न (८) असिरत्न (९) दण्डरत्न (१०) चक्ररत्न (११) छत्ररत्न (१२) चर्मरत्न (१३) मणि-रत्न (१४) काकिणीरत्न।

उपरोक्त चौदह रत्न अपनी-अपनी जाति में सर्वोत्कृष्ट होते हैं। इसी-लिए ये रत्न कहलाते हैं। इन चौदह रत्नों में से पहले के सात रत्न पञ्चेन्द्रिय हैं। शेष सात रत्न एकेन्द्रिय पृथ्वीकायमय हैं।

२. लक्ष्मीः कौस्तुभ-पारिजातक-सुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,
गावः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः शङ्खो विषं चाम्बुधे,
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सदा मङ्गलम्॥

(१) लक्ष्मी (२) कौस्तुभमणि (३) कल्पवृक्ष (४) मदिरा (५) धन्वन्तरि वैद्य (६) चन्द्रमा (७) कामधेनु गाय (८) ऐरावतहाथी (९) रम्भाआदि अप्सराएँ (१०) सात मुखवाला उच्चैःश्रवा घोड़ा (११) अमृत (१२) विष्णु-धनुष (१३) शंख (१४) विष—ये चौदह रत्न सदा मंगल करें। (भागवतादि पुराणों के अनुसार जब देवों और दानवों ने मिलकर समुद्र-मथन किया था तब उसमें से उपरोक्त १४ रत्न निकले थे।)

(घ) विभिन्न देशों की मुद्राएं :—

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
१ अर्जेन्टाइना	पेसो	२६. ग्वातेमाला	क्वेतजल
२. आस्ट्रेलिया	पौंड	२७. ग्रीस	ड्राक्म
३. अल्जीरिया	फ्राक	२८ घाना	पौंड
४. आस्ट्रिया	शिलिंग	२९ हैती	कुरडे
५ बेल्जियम	फ्राक	३०. हांगकांग	हांगकांग
६. ब्रिटेन	पौंड (स्टर्लिंग)	३१. होंडूरास	लेम्पीरा
७. बर्मा	कियाट	३२ भारत	रुपया
८ बल्गेरिया	लेवा	३३. आइसलैंड	क्रोना
९. सीलोन	रुपया	३४. ईरान	रियल
१० कनाडा	डालर	३५ इराक	दीनार
११ कोलम्बिया	पेसो	३६ इन्डोनेशिया	रुपया
१२ कोस्टारिका	कोलोन	३७. इटली	लीरा
१३ क्यूबा	पेसो	३८. जापान	येन
१४ मलयेशिया	डालर	३९. आयरिश रिपब्लिक	पौंड
१५ चिली	पेसो	४० कोरिया	ह्वान
१६. कम्युनिस्ट चीन	यूआन	४१ जोर्डन	दीनार
१७ चेकोस्लोवाकिया	क्राउन	४२. सूडान	पौंड
१८ डेन्मार्क	क्रोनर	४३. सिएरालिओन	फ्रीटाउन
१९ डोमीनिकन		४४ लेबनान	पौंड
२० एलसाल्वेडर	कोलोन	४५ लक्जेमबर्ग	फ्राक
२१. रिपब्लिक	पेसो	४६ मेक्सिको	पेसो
२२ फिनलैण्ड	मार्क्का	४७. लीबिया	पौंड
२३. इथोपिया	डालर	४८. नीदरलैण्ड	गिल्डर
२४. जर्मनी	मार्क	४९. मोरक्को	दरहम
२५ फ्रांस	न्यूफ्राक	५०. नार्वे	. क्रोन

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
५१. न्यूजीलैण्ड	पौंड	६४ स्वीडन	क्रोनर
५२. पाकिस्तान	रुपया	६५. सीरिया	पौंड
५३. नीकारगुआ	कोरडोवा	६६. तुर्की	लीरा
५४. पेरु	सोल	६७. स्विट्जरलैंड	फ्रांक
५५. पनामा	वालबोआ	६८. मिस्र	पौंड
५६ पोलैण्ड	ज्लेरी	६९. थाईलैण्ड	वहूर
५७. फिलीपीन	पेसो	७०. यूरुग्वे	पेरो
५८. रुमानिया	लेव	७१. अमेरिका	डालर
५९ पुर्तगाल	एस्कुडो	७२. युगोस्लाविया	दीनार
६०. सऊदी अरब	रियाल	७३. सोवियत संघ	रूबल
६१. स्पेन	पेसेटा	७४ नेपाल	रुपया
६२. सूडान	पौंड	७५. वेनेजुएला	बोलिवर
६३. दक्षिणी अफ्रीका	रैंड		



धन की निन्दनीयता

१ अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे,
पिता-पुत्र विरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तुते ।

हे धन ! तू अविश्वास का निधान है, महापाप का हेतु है और पिता-पुत्र को लड़ानेवाला है अतः तुझे दूर से ही नमस्कार है।

२. अर्थानामर्जने दुःख-मर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः ॥

—पञ्चतन्त्र १।७४

धन का संग्रह करने मे दुःख है और सग्रहीतधन की रक्षा करने में भी दुःख है। धन की आय मे दुःख है एव उसके व्यय मे भी दुःख है। अतः दुःख के सश्रयरूप धन को धिक्कार है।

३. अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयास-स्त्रासश्चिन्ता भयं नृणाम् ॥

—भागवत ११।२३।१७

धन कमाने मे, कमाकर उसे बढाने मे, रखने मे, खर्च करने में, उसके नाश मे या उपभोग मे, जहाँ भी देखो, वहाँ परिश्रम है, त्रास है, चिन्ता है और भय है।

४. माया नें भय है, काया नें भय कोनी।

—राजस्थानी कहावत

५. दौलत की दो लात है, "तुलसी" निश्चय कीन्ह।
आवत अन्धा करत है, जावत करे अधीन ॥

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
५१. न्यूजीलैण्ड	पौंड	६४. स्वीडन	क्रोनर
५२. पाकिस्तान	रुपया	६५. सीरिया	पौंड
५३. नीकारगुआ	कोरडोबा	६६. तुर्की	लीरा
५४. पेरु	सोल	६७. स्विट्जरलैंड	फ्रांक
५५. पनामा	बालबोआ	६८. मिस्र	पौंड
५६ पोलैण्ड	ज्लोटी	६९. थाईलैण्ड	बहूत
५७ फिलीपीन	पेसो	७० यूरुग्वे	पेसो
५८. रुमानिया	लेव	७१. अमेरिका	डालर
५९. पुर्तगाल	एस्कुडो	७२. युगोस्लाविया	दीनार
६०. सऊदी अरब	रियाल	७३. सोवियत संघ	रूबल
६१. स्पेन	पेसेटा	७४ नेपाल	रुपया
६२. सूडान	पौंड	७५. वेनेजुएला	बोलिवर
६३. दक्षिणी अफ्रीका	रैंड		

८ धन की निन्दनीयता

१ अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे,
पिता-पुत्र विरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तु ते ।

हे धन ! तू अविश्वास का निधान है, महापाप का हेतु है और पिता-पुत्र को लडानेवाला है अत तुझे दूर से ही नमस्कार है ।

२. अर्थानामर्जने दु ख-मर्जितानां च रक्षणे ।
आये दु ख व्यये दु ख धिगर्था कष्टसश्रया ॥

—पञ्चतन्त्र १।७४

धन का सग्रह करने मे दु ख है और सग्रहीतधन की रक्षा करने मे भी दु ख है । धन की आय मे दु ख है एव उसके व्यय मे भी दुःख है । अत दु ख के सश्रयरूप धन को धिक्कार है ।

३. अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयास-स्त्रासश्चिन्ता भय नृणाम् ॥

—भागवत ११।२३।१७

धन कमाने मे, कमाकर उसे बढाने मे, रखने मे, खर्च करने मे, उसके नाश मे या उपभोग मे, जहाँ भी देखो, वहाँ परिश्रम है, त्रास है, चिन्ता है और भय है ।

४. माया नै भय है, काया नै भय कोनी ।

—राजस्थानी कहावत

५. दौलत की दो लात है, "तुलसी" निश्चय कीन्ह ।
आवत अन्धा करत है, जावत करे अधीन ॥

६. कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः ?

—पञ्चतंत्र

धन पाकर कौन गर्वित नहीं हुआ ?

७. स्तेयं हिंसानृतं दम्भः, कामः क्रोधः स्मयो मदः,
भेदो वैरमविश्वासः, सस्पर्द्धा व्यसनानि च।
एते पञ्चदशानर्था, ह्यर्थमूला मता नृणाम्,
तस्मादनर्थमर्थाख्यं, श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२३।१८-१९

१. चोरी, २ हिंसा, ३. झूठ, ४. दम्भ, ५ काम, ६. क्रोध, ७. चित्तोन्नति, ८ अहंकार, ९. भेदबुद्धि, १०. वैर, ११. अविश्वास, १२. सस्पर्द्धा, १३. व्यसन अर्थात् व्यभिचार, १४. जूआ, १५. शराब— ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण से ही माने गये हैं। अतः कल्याणकामी पुरुष को अर्थ-नामधारी इस अनर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए।

८. धन से नर्म बिछौना मिल सकता है, नींद नहीं, मन्दिर-मस्जिद बन सकते हैं, भगवान नहीं, भौतिकसुख मिल सकते हैं, आत्मिकसुख नहीं, प्रशंसक मिल सकते हैं, हितचिन्तक नहीं, दिखावे का मान मिल सकता है, हार्दिक सम्मान नहीं, पुस्तक खरीद सकते हैं विद्या नहीं, नौकर रखा जा सकता है, सच्चा सेवक नहीं।

—महेन्द्रकुमार वशिष्ठ

९. धन के लिए लाखों-करोड़ों व्यक्ति मुर्दे-से होकर घूम रहे हैं, मशीनों की तरह दिन-रात खट रहे हैं, जेलों में (चोर-डाकू आदि) सड़ रहे हैं, सधवा, विधवा, कुमारी स्त्रियाँ वेश्यायें बन रही हैं, तीर्थों में पंडे पुजारी लोग लोगों को ठग रहे हैं, भाई-भाई लड़-झगड़ रहे हैं तथा सरकार प्रजा को लूट रही है और प्रजा सरकार को धोखा दे रही है।

—सकलित

१०. दायादा· स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो,
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग् भस्मीकरोति क्षणात् ।
अम्भः प्लावयति क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद्,
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग् बह्वधीन धनम् ॥

—सिन्दूरप्रकरण ७४

ज्ञातिजन स्पृहा करते हैं, चोर चुरा लेते हैं, छल द्वारा राजा ले लेते हैं, अग्नि भस्म कर डालती है, पानी बहा देता है, जमीन मे छिपा कर रखे हुए को यक्ष हर लेते हैं तथा दुराचारी पुत्र इसको नष्ट कर देते हैं। अत· धिक्कार है बहुतो के अधीन रहनेवाले इस धन को !

११. एक सौतेली माँ ने अपने सौतेले पुत्र को विष देकर इसलिए मार डाला कि यह बडा होने पर मेरे पुत्रों के हक मे हिस्सा लेगा।

—उत्तरप्रदेश की घटना

१२ ईरान के एक जमीदार को खेत मे दो सिक्के मिले। वह उन्हें लेकर बाजार मे आया। पुलिस-अधिकारी के पूछने पर उसने स्थान बताया। रात को साथियो सहित पुलिस-अधिकारी ने वह स्थान खोदा। नीचे एक मकान निकला। अंधेरे मे उतरे। सोने की रेत से घडे भरे थे। ६५ करोड का धन था। बात फूटी ! सारे के सारे गिरफ्तार एवं धन जब्त !

—अध्ययन के आधार पर



९ अन्याय का धन

१. पिपीलिकार्जितं धान्य, मक्षिकासंचितं मधु।
अन्यायोपार्जितं द्रव्य, चिरकालं न तिष्ठति॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६१

चीटियो का इकट्ठा किया हुआ धान्य, मक्खियो का संचित मधु और अन्याय से उपार्जित धन—ये तीनो चीजें अधिक समय तक नही ठहरती।

२. अन्यायोपार्जितं द्रव्य, दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशेवर्षे, समूल च विनश्यति॥

—चाणक्यनीति १५।६

अन्याय से पैदा किया हुआ धन दश वर्ष रहता है। ग्यारहवें वर्ष समूल नष्ट हो जाता है।

३. दुर्जनस्यार्जितं वित्तं, भुज्यते राजतस्करैः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

दुर्जनो का संचित धन प्राय. राज्य-कर्मचारी ही खाया करते हैं।

४. कीडी सचै, तीतर खाय (आंधी पीसै, कुत्ता खाय)।
पापी रो धन पर लै जाय।

—राजस्थानी कहावत

५. दूध ना दूध मां जाय नें पाणी ना पाणी मां जाय।
● चोर नें पोटले धूल नी धूल।

—गुजराती कहावतें

६. चोरी रो धन मोरी मे।

—राजस्थानी कहावत

१० न्यायार्जित धन

१. शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते, सतामपि न सम्पदः।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णा, कदाचिदपि सिन्धवः॥

—आत्मानुशासन ४५

सज्जनों के भी शुद्ध धन से सम्पदाएँ नही बढती। जैसे—स्वच्छजलों से नदियाँ कभी पूर्ण नही होती।

२. रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः, पापीस्ता अनीनशन्।

—अथर्ववेद ७।११५।४

पुण्यकारिणी लक्ष्मी मेरे घर की शोभा बढाए तथा पापकारिणी लक्ष्मी नष्ट हो जाए।

३. न्यायागतस्य द्रव्यस्य, बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च, पात्रे चाप्रतिपादनम्॥

—विदुरनीति १।६४

न्याय से अर्जित धन के व्ययसम्बन्धी दो अतिक्रम हैं अर्थात् दुरुपयोग हैं—अपात्र को देना और पात्र को न देना।



११ वास्तविक धन

१. यत्कर्मकरणेनान्त: सतोष लभते नरः।
वस्तुतस्तद्धन मन्ये, न धनं धनमुच्यते ॥

—रश्मिमाला २६।१

जिस काम के करने मे मनुष्य की अन्तरात्मा को सन्तोष होता है, मैं वास्तव मे उसीको धन मानता हू, लौकिक वस्तु को धन नही कहा जाता।

२. पृथिव्या त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढै: पाषाणखण्डेषु रत्नसज्ञा विधीयते॥

—चाणक्यनीति १४।१

पृथ्वी मे तीन रत्न है—जल, अन्न और सुभाषित। मूर्ख लोग पत्थर के टुकडो—हीरा–पन्ना–माणिक आदि को रत्न के नाम से व्यर्थ ही पुकार रहे हैं।



१२ लक्ष्मी

१. न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, वह जैसे चाहती है, नचाती है।

—प्रेमचन्द

२. जीवन मे बुद्धि का नही, लक्ष्मी का साम्राज्य है।

—सिसेरो

३. मातुर्लक्ष्मि ! तव प्रशादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणा ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

हे लक्ष्मी माता ! तेरी कृपा से दोष भी गुण बन जाते हैं।

४ सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् ।

सच्ची लक्ष्मी वही है, जिससे परोपकार किया जा सके ।

५. किं तया क्रियते लक्ष्म्या, या वधूरिव केवला ।
या न वेश्येव सामान्यै, पथिकैरुपभुज्यते ।

—पञ्चतन्त्र ४।३७

जो कुलवधूवत् केवल पति के ही उपभोग मे आए और वेश्यावत् सामान्य पथिकों के उपभोग मे न आए, उस लक्ष्मी से क्या लाभ ?

६ लक्ष्मी अकनकुंवारियाँ, नर हुआ जोध-जवान ।
मेरी-मेरी कर मुआ, हिन्दू-मुसलमान ॥



१३ लक्ष्मी का मूल आदि

१. अनुद्वेगः श्रियो मूलम्।

—योगवाशिष्ठ-३।२२।२२

उद्विग्न न होना समृद्धि का मूल है।

२. जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः।

—सुभाषितरत्नखंडमंजूषा

लोकप्रियता से ही सम्पदाएँ मिलती हैं।

३. लक्ष्मी उन्हीं की सहायता करती है, जिनका निर्णय विवेकशील होता है।

—यूरीपीडीज

४. श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति, प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्षिण्यात् कुरुते मूलं, संयमात् प्रतितिष्ठति।

—विदुरनीति-३।५१

लक्ष्मी शुभकर्मों से उत्पन्न होती है, चतुरता से बढ़ती है, निपुणता से जड़ जमाती है और संयम से स्थिर होती है।

५. धृतिः क्षमा दया शौचं, कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणामनभिद्रोहः, सप्तैताः समिधः श्रियः।

—विदुरनीति-६।३८

धृति, क्षमा, दया, पवित्रता, करुणा, अकठोरता तथा मित्रों के साथ अद्रोहभाव—ये सात गुण लक्ष्मी की समिधाएँ अर्थात् शोभा बढ़ाने वाले हैं।

६. सत्यैकभूषणा वाणी, विद्या विरतिभूषणा ।
धर्मैकभूषणा मूर्त्ति-र्लक्ष्मी सद्दानभूषणा ।

—चवचरित्र, पृष्ठ ७१

वाणी का भूषण सत्य है, विद्या का भूषण विरति है, शरीर का भूषण धर्म है और लक्ष्मी का भूषण दान है ।



१४ लक्ष्मी की नश्वरता एवं अस्थिरता

१. संपद: स्वप्नसंकाशा, संपदो जलदोपमा ।

सम्पदाएँ स्वप्न के समान हैं एव मेघवत् क्षणभगुर हैं ।

2. Riches have wings

रिचेज हैव विंग्स ।

—अंग्रेजी कहावत

धन के पख होते हैं ।

३. कमला थिर न 'रहीम' ! कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुप पुरातन की वधू, क्यों न चचला होय ?

४. ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राभन्यमन्यमुपतिष्ठन्त राय: ।

—ऋग्वेद १०।११७।५

रथ के पहिये की तरह धन भी इधर-उधर (अनेक लोगों के पास) घूमता ही रहता है ।

५. सम्पदा बुरे सेवकों के समान नये-नये स्वामी करती ही रहती है ।

—बर्क

६. कोहिनूर हीरे का पर्यटन—कोहिनूर हीरा गोलकुंडा की खान में निकला था । महाभारत के समय भागलपुर-पति कामसेन के पास था । फिर क्रमशः हस्तिनापुरपति, उज्जैनपति, अलाउद्दीन खिलजी, हुमायूं, ईरानपति, शाहजहां, औरंगजेब, नादिरशाह एवं लाहौरपति रणजीत सिंह के पास रहा । वहाँ से महारानी विक्टोरिया के पास पहुंचा । इसका वजन ३१८॥ रत्ती, सम्राट् [illegible] और [illegible]

लाख, बानवे हजार, दो सौ पैंतालीस पौंड आँकी गई थी। नादिरशाह ने इसे "कोहेनूर" नाम से पुकारा था।

७. अभ्रच्छाया खलप्रीति, सिद्धमन्न च योषित।
किंचित्कालोपभोग्यानि, यौवनानि धनानि च॥

—पंचतन्त्र-२।१२०

बादल की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री, यौवन और धन—ये छ चीजें किंचित्काल तक ही उपयोग में आने योग्य हैं—अस्थिर हैं।

८. ऐश्वर्यं च विनाशान्तम्।

—शुभचन्द्राचार्य

ऐश्वर्य निश्चय ही अन्त में नष्ट होनेवाला है।

९. जलबुद्बुदसमाना विराजमाना सपत् तडिल्लतेव सहसैवोदेति नश्यति च।

—दशकुमारचरित

सम्पत्ति जल के बुलबुले के समान होती है। वह विद्युत की भांति एकाएक उदय होती है और नष्ट हो जाती है।



१५ लक्ष्मी का निवास

१. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम्।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

लक्ष्मी न्याय-गुण से समृद्ध व्यक्ति का अनुसरण करती है।

२. परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति।

—चाणक्यसूत्र ११३

विचार कर काम करनेवाले के पास लक्ष्मी चिरस्थायी होती है।

३. यत्र नीति-बले चोभे, तत्र श्री: सर्वतोमुखी।

—शुक्रनीति

जहां नीति और बल दोनों का सम्मिलन है, वहां लक्ष्मी सर्वतोमुखी होकर विहार करती है।

४. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पद:।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहां न्याय और शौर्य होते हैं, वहीं सम्पदाएं निवास करती हैं।

५. गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र वाणी सुसंस्कृता।
अदन्तकलहो यत्र, तत्र, शक्र! वसाम्यहम्॥

जहां गुरुजनों की पूजा है, अच्छे संस्कारोंवाली वाणी है और दन्तकलह नहीं है, हे इन्द्र! मैं (लक्ष्मी) वहां निवास करती हूँ।

६ वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पद:।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहां सच्चे वक्ता-श्रोता हों, वहां सम्पदाएं रमण करती हैं।

१६ लक्ष्मी के अप्रियस्थान

१. इह हि न निरीहदेहिनं श्रिय संश्रयन्ते।

—दशकुमारचरित

इस संसार मे जो प्रयत्न नही करता, उसे लक्ष्मी नहीं मिलती।

२. अर्थतोषिण श्रिय परित्यजति।

—कौटलीय अर्थशास्त्र

धन के सन्तोषी व्यक्ति को लक्ष्मी छोड जाया करती है।

३ अतिदाक्षिण्ययुक्ताना, शङ्किताना पदे-पदे।
परापवादभीरूणा, दूरतो यान्ति सम्पद ॥

—भोजप्रबन्ध २०

जो आदमी अति सयाने होते हैं, कदम-कदम पर शकाशील होते है और लोकापवाद से डरनेवाले होते हैं, उनसे सम्पदाएँ दूर ही रहती हैं।

४ अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मी।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहां अभ्यागत है, वहां प्राय. लक्ष्मी नही।

५ कुचैलिन दन्तमलोपधारिण, बह्वाशिन निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयान, विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

—चाणक्यनीति १५।४

गन्दे वस्त्र रखनेवाला, दांतो पर मैल धारण करनेवाला, अधिक खानेवाला, कठोरवाणी बोलनेवाला सूर्योदय एव सूर्यास्त के समय सोनेवाला यदि चक्रपाणि-विष्णु हो तो भी लक्ष्मी उसका परित्याग कर देती है।

१५ लक्ष्मी का निवास

१. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम्।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

लक्ष्मी न्याय-गुण से समृद्ध व्यक्ति का अनुसरण करती है।

२. परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति।

—चाणक्यसूत्र ११३

विचार कर काम करनेवाले के पास लक्ष्मी चिरस्थायी होती है।

३. यत्र नीति-बले चोभे, तत्र श्रीः सर्वतोमुखी।

—शुक्रनीति

जहाँ नीति और बल दोनों का सम्मिलन है, वहाँ लक्ष्मी सर्वतोमुखी होकर विहार करती है।

४. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ न्याय और शौर्य होते हैं, वहीं सम्पदाएँ निवास करती हैं।

५. गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र वाणी सुसंस्कृता।
अदन्तकलहो यत्र, तत्र, शक्र! वसाम्यहम्॥

जहाँ गुरुजनों की पूजा है, अच्छे संस्कारोंवाली वाणी है और दन्तकलह नहीं है, हे इन्द्र! मैं (लक्ष्मी) वहाँ निवास करती हूँ।

६ वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पदः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ सच्चे वक्ता-श्रोता हों, वहाँ सम्पदाएँ रमण करती हैं।

१६ लक्ष्मी के अप्रियस्थान

१. इह हि न निरीहदेहिनं श्रिय संश्रयन्तो।

—दशकुमारचरित

इस संसार में जो प्रयत्न नहीं करता, उसे लक्ष्मी नहीं मिलती।

२. अर्थतोपिण श्रिय. परित्यजति।

—कौटलीय अर्थशास्त्र

धन के सन्तोषी व्यक्ति को लक्ष्मी छोड़ जाया करती है।

३ अतिदाक्षिण्ययुक्ताना, शङ्किताना पदे-पदे।
परापवादभीरूणा, दूरतो यान्ति सम्पद.॥

—भोजप्रबन्ध २०

जो आदमी अति सयाने होते हैं, कदम-कदम पर शंकाशील होते हैं और लोकापवाद से डरनेवाले होते हैं, उनसे सम्पदाएँ दूर ही रहती हैं।

४ अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मी।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ अभ्यागत है, वहाँ प्राय लक्ष्मी नहीं।

५. कुचेलिन दन्तमलोपधारिण, बह्वाशिन निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयान, विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

—चाणक्यनीति १५।४

गन्दे वस्त्र रखनेवाला, दांतों पर मैल धारण करनेवाला, अधिक खानेवाला, कठोरवाणी बोलनेवाला सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय सोनेवाला यदि चक्रपाणि-विष्णु हो तो भी लक्ष्मी उसका परित्याग कर देती है।

६. पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषाद्,
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजा-निमित्तं,
तस्मात्खिन्ना सदैव द्विजकुलनिलय नाथ! नित्यं त्यजामि॥
—चाणक्यनीति १५।१६

लक्ष्मीदेवी कहती हैं—अगस्त्य ऋषि ने रुष्ट होकर मेरे पिता (समुद्र) को पी डाला, भृगु ऋषि ने क्रोध के मारे मेरे पति (विष्णु) को लात मारी तथा बाल्यवय से ही ब्राह्मण मेरी वैरिणी (सरस्वती) को अपने मुख में धारण करते हैं और उमापति (शिव) की पूजा करने के लिए मेरे गृह (कमल) को प्रतिदिन तोड़ते रहते हैं—इन्हीं कारणों से खिन्न होकर मैं ब्राह्मण-कुल से सदैव दूर रहा करती हूँ।





१७ लक्ष्मी के विकार

१ ऋद्धिश्चित्तविकारिणी।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

ऋद्धि चित्त को विकृत करनेवाली है।

२. जहाँ सम्पत्ति और वैभव होता है, वहाँ अभिमान भी आता है और चिन्ता भी।

—ताओ-उपनिषद् ३६

३ यत्रास्ति लक्ष्मीर्विनयो न तत्र।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ लक्ष्मी होती है, वहाँ विनय नहीं रहता।

४ बधिरयति कर्णविवरं, वाचं मूकयति नयनमन्धयति।
विकृतयति गात्रयष्टिं, संपद्रोगोयमद्भुतो राजन्!

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

हे राजन्! यह सम्पदारूपी अद्भुत रोग कानों को बधिर (बहरा), वाणी को मूक (चुप), नेत्र को अन्ध एवं शरीर को विकृत बना डालता है।

५. लक्ष्मि! क्षमस्व वचनीयमिदं मदीय—
मन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन।
नो चेत् कथं कमलपत्रविशालनेत्रो,
नारायणः स्वपिति पन्नगभोगतल्पे।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६५

लक्ष्मी! मैं कटुवक्तव्य के लिए तेरे से क्षमा मांगता हुआ कहता हूँ कि

तेरी उपासना से पुरुष अन्धे हो जाते हैं। अन्यथा कमलपत्रवत् विशालनेत्रवाले नारायण शेषनाग की शय्या पर क्यों सोते ?

६ लक्ष्मी का वाहन उल्लू और सरस्वती का वाहन हंस अर्थात्—धन होने से व्यक्ति अन्धा एवं ज्ञान होने से विवेकशील बनता है।

—विवेकानन्द

७. पद्मे ! मूढजने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो ?
नाहं मत्सरिणी न चापि चपला नैवास्मि मूर्खे रता।
मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयतां,
विद्वान् सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्यागतिः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६६

किसी ने लक्ष्मी से पूछा कि तू मूर्खों को ही प्रायः धन देती है। क्या विद्वानों के साथ तेरा कुछ मत्सर-भाव है ? लक्ष्मी ने कहा—मैं मत्सरिणी चंचल और मूर्खों में अनुरक्त नहीं हूं, किन्तु जो मूर्खों को धन देती हूं, उसका कारण यह है कि विद्वान् तो विद्या के कारण सब लोगों का पूज्य है ही, किन्तु मूर्ख की मेरे बिना कोई गति ही नहीं होती।

८. अकाण्डपातोपनता, न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् ?

—कथासरित्सागर

अचानक मिली हुई लक्ष्मी किसको विमोहित नहीं करती ?

९, दीनों की लक्ष्मी से प्रार्थना—

निद्राति स्नाति भुङ्क्ते चलति कचभरान् शोषयत्यन्तरास्ते,
दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरः प्रातरायाहि ! याहि !
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतैर्वारितान् द्वारि दीना—
नस्मान् पद्माक्षि कन्ये ! सरसिरुहमना क्षान्तरङ्गैरपाङ्गैः॥

महाराज अभी सो रहे हैं, नहा रहे हैं, भोजन कर रहे हैं, टहल रहे हैं, केशों को सुखा रहे हैं, आराम कर रहे हैं, अभी उनसे बात नहीं होगी—जाओ ! सवेरे आना। हे कमलनेत्रे लक्ष्मी ! इस प्रकार पदाधीशों के

अधिकारी द्वारों पर हम दोनों को रोकते ही रहते हैं, अतः तू हमें कृपा-कटाक्ष से देख।

१०. इन्दासणी न त कुज्जा, दित्तो वण्ही अणं अरी।
आसादिज्जतसंबंधो ज कुज्जा ऋद्धिगारवो॥
—ऋषिभाषित ४५।४३

इन्द्र का वज्र, प्रज्वलित अग्नि, ऋण और शत्रु—ये इतनी हानि नहीं पहुँचा सकते, जितनी हानि मन से आस्वादित ऋद्धि का गर्व पहुँचाता है।

११. तीन प्रकार का नशा होता है—

१. लक्ष्मी का नशा—संग्रह से चढता है।

२. मदिरा का नशा—पीने से चढता है।

३. स्त्री का नशा—देखने से चढता है।



१८

धनवान्

१. वयोवृद्धास्तपोवृद्धा, ये च वृद्धा बहुश्रुताः ।
तेसर्वे धनवृद्धानां द्वारे तिष्ठन्ति किंकराः ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और ज्ञान मे वृद्ध—ये सभी धनवृद्धो के द्वार पर किंकर होकर खड़े रहते हैं।

२. न विद्यया नैव कुलेन गौरवं, जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा।
कपालिना मौलिधृतापि जाह्नवी, प्रयाति रत्नाकरमेव सत्वरम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

संसार मे न विद्या का गौरव है और न कुल का गौरव है। लोगो का प्रेम हमेशा धनिको मे रहता है। देखो! महादेवजी द्वारा मस्तक पर धारण कर लेने पर भी गंगानदी शीघ्रता से समुद्र मे ही जाती है, क्योंकि वह रत्नो का भण्डार है।

३. श्रीमतो ह्यरण्यान्यपि भवति राजधानी।
—नीतिवाक्यामृत ३२।३६

श्रीमन्तो के भयकर अटवी भी राजधानी बन जाती है।

४. लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति, प्रायेण परवेदनाम्।
शेषे धराभरक्लान्ते, शेते नारायणः सुखम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

लक्ष्मी वाले लोग प्रायः परपीडा को नही जाना करते। देखो! पृथ्वी के भार से क्लान्त शेषनाग पर भी नारायण सुख से सोये रहते हैं।

५. ईश्वराणां हि विनोदरसिकं मन ।

—किरातार्जुनीय

धनिको का मन विनोदरसिक होता है ।

६. कोई भला आदमी अचानक धनी नही बन गया। जो धनी बनने की शीघ्रता मे है, कभी निर्दोष नही रह सकता ।

—बाइबिल

७. लूट-लूट इस जगत को, बनते धनी कुबेर।
बिना पडे खड्डा कही, नहि लग सकता ढेर ॥

—दोहासदोह

८. मशीन की सहायता से एक मजदूर, आदमी से २०० गुणा अधिक काम कर लेता है। यदि एक मिल मे दो हजार मजदूर काम करते हो, तो छः लाख मनुष्यो जितना काम होता है। सबका अधिकाश लाभ मिल-मालिक लेजाते है एव एशोआराम मे बर्बाद करते है।

—'उज्ज्वलवाणी से'

९. धनी बनना चाहनेवाले को मितव्ययी होना जरूरी है। मैंचेस्टर के धनी 'वेकरब्रुक' एक पौंड पैदा करके एक शिलिंग (२१वाँ हिस्सा) खर्च करते थे।

१० भाग्यवान वह, जिसका धन गुलाम है।
अभागा वह, जो धन का गुलाम है।

—वाल्टेयर



१९ दुनिया के बड़े धनी

१. शाहजहाँ के पास ७०० मन 'सोना', १४०० मन 'चाँदी', ८० रत्तल 'हीरे', १०० रत्तल 'माणिक' और ६०० रत्तल 'मोती' थे। एक करोड़ के 'कपड़े' एवं पच्चीस लाख से अधिक के 'मिट्टी के बर्तन' थे। उसके पास ७ फुट लम्बा और ४ फुट चौड़ा एक 'रत्न-जटित (नहाने का) टब' था, जिसकी कीमत आज की मूल्य-गणना में दस अरब रुपये होती है।

—अध्ययन के आधार पर

२. टेक्सास (स. रा. अमेरिका) के 'हेरोल्डसन लफायतेहंट' की सम्पत्ति बीस अरब डालर है। उसकी दैनिक आय दो लाख चालीस हजार डालर है।

- हैदराबाद (दक्षिण) के निजाम की सम्पत्ति एक अरब डालर है।

- आगाखाँ एक अरब सत्तर करोड़ के स्वामी हैं।

- हेनरी फोर्ड अड़तालीस करोड़ पौंड के मालिक हैं। वार्षिक आय दो करोड़ चालीस लाख पौंड है।

इसी प्रकार रॉकफेलर एवं ब्रिटिश-नरेश आदि भी विश्व के बड़े धनिकों में गिने जाते हैं।

—लगभग २५ वर्ष पूर्व के समाचारपत्रों से संकलित

३. भारत के बड़े-बड़े उद्योगगृहों की कुल पूंजी—

(करोड़ रुपयों में)

नाम	पूंजी सन् १९६६-६७	पूंजी सन् १९६९-७०
१. टाटा	५०५·३६	६२८·५०
२. बिरला	४५७·८४	६२९·६०
३. मार्टिन बर्न	१५३·००	१७६·००
४. बागड़	१०४·३१	१३९·९०
५. थापर	९८·८०	११५·७०
६ सूरजमल नागरमल	९५·६२	१०३·९०
७. मफतलाल	९२·७०	११६·७०
८. ए सी सी.	८९·८०	१२०·७०
९. वालचन्द	८१·११	१००·७०
१० श्रीराम	७४·१३	१०७·९०

—नवभारतटाइम्स, २७ अगस्त १९७२

४ तीन प्रकार के इभ सेठ—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ—

अम्बावाडी सहित हाथी डूबे—इतना रत्न-पुञ्ज जिसके पास हो, वह उत्तम, इतना सोना जिसके पास हो वह मध्यम और इतनी चांदी जिसके पास हो वह कनिष्ठ ।

—प्राचीन-संग्रह के आधार पर



१. भक्ते द्वेषो जडे प्रीतिः, प्रवृत्तिर्गुरुलङ्घने ।
मुखे कटुकता नित्यं, धनिनां ज्वरिणामिव ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

भक्त के प्रति द्वेष, जड़ में प्रेम, गुरु-लंघन की प्रवृत्ति और मुख में कटुता, ज्वर-ग्रस्त पुरुषों की तरह धनिकों में भी ये चीजें प्रायः होती ही हैं। यहाँ सभी शब्दों के दो-दो अर्थ हैं। जैसे—भक्त—भक्ति करनेवाला और भोजन, जड़—मूर्ख और जल; गुरुलंघन—बड़ों का अपमान और गरिष्ठभोजन का लंघन, मुखकटुता—मुख में कटुवाणी और कड़वापन।

२. प्रायेण श्रीमतां लोके, भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि, दरिद्राणां महीपते ॥

—विदुरनीति-२।५१

हे राजन्! धनिकों में प्रायः खाने की शक्ति नहीं होती। गरीबों को काष्ठखण्ड भी हजम हो जाते हैं।

३. यथामिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि ।
आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥

—पञ्चतन्त्र, १।४३४

जैसे—मांस को जल में मत्स्य, पृथ्वी पर हिंसक पशु और आकाश में पक्षी भक्षण करते हैं, इसी प्रकार धनिक को सभी लोग ग्रसते हैं।

४. ईसा का कहना है कि सुई के छेद में से ऊँट का निकलना सहज है, पर धनवालों को स्वर्ग मिलना कठिन है।

—लूका १८।२५, ईसाई धर्मग्रन्थ

२१ निर्धन और निर्धनता

१. अन्तरं नैव पश्यामि, निर्धनस्य मृतस्य च ।

निर्धन मे और मृतक मे कोई अन्तर प्रतीत नही होता।

२ वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीन-जीवनम् ॥

—चाणक्यनीति-१०।१२

व्याघ्रादि युक्त वन मे निवास, वृक्ष का घर, फल और पानी का भोजन तृणो पर शयन तथा जीर्ण-वल्कल का परिधान—ये सभी काम अच्छे हैं, किन्तु बन्धुओ मे धनहीन होकर जीना अच्छा नही।

३. नयेन नेता विनयेन शिष्य, शीलेन लिङ्गी प्रशमेन साधु ।
जीवेन देह सुकृतेन देही, वित्तेन गेही रहितो न किंचित् ॥

नयहीन नेता, विनयहीन शिष्य, आचारहीन लिङ्गी-वेषधारी, प्रशमहीन साधु, जीवनहीन शरीर तथा धर्महीन जीव की तरह धनहीन गृहस्थ भी कुछ नही अर्थात् निकम्मा है।

४. गगनमिव नष्टतार, शुष्कसर श्मशानमिव रौद्रम् ।
प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृह धनविहीनस्य ॥

—पञ्चतन्त्र ५।६

तारविहीन आकाश एव सूने तालाब की तरह निर्धन मनुष्य का घर दीखने मे अच्छा होने पर भी श्मशानवत् डरावना तथा रूखा सा प्रतीत होता है।

५. टकाधर्म टकाकर्म, टका ही परम पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति, हा टका ! टक-टकायते ॥

६. तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म,
सा बुद्धिरप्रहिता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ४०

वे ही सब इन्द्रियाँ हैं, वही कर्म है, वही अप्रतिहत-बुद्धि है और वही वाणी है। आश्चर्य है, फिर भी धन की ऊष्मा से रहित वही आदमी क्षणभर में दूसरा-सा प्रतीत होने लगता है।

७. कौड़ी के सब जहान में, नक्शे-नगीन हैं,
कौड़ी न हो तो कौड़ी के, सब तीन-तीन हैं।

—उर्दू शेर

८. गतवयसामपि पुंसा, येषामर्था भवन्ति ते तरुणाः।
अर्थे न तु ये हीना, वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ॥

—पचतन्त्र १।१०

जिनके पास धन है, वे बुढ़ापे में भी जवान बने रहते हैं और जिनके पास धन नहीं है वे जवानी में भी बूढ़े से प्रतीत होने लगते हैं।

९. सम्पदा अनेक मित्र बना लेती है लेकिन निर्धन अपने पड़ोसी से भी वियुक्त हो जाता है।

—बाइबिल

१०. निर्धनता—

(क) निर्धनता कोई पाप नहीं है। —हावर्ड

(ख) धन दुर्गुणों पर पर्दा डाल देता है, परन्तु सद्गुण निर्धनता में आश्रय पाते हैं।

—डियोजिनिस

(ग) हमारी वास्तविक निर्धनता यह है कि हम दूसरों को सुधारने का अधिक से अधिक प्रयत्न करते हैं और खुद को सुधारने का कम से कम। —धूमकेतु



२२ गरीब और गरीबी

१ मोहन ! पास गरीब के, को आवत को जात ?
एक विचारो सास है आत-जात-दिन-रात ॥

२ गरीब रो बेली परमेश्वर।

—राजस्थानी कहावत

३ माया ने माया मिलै, कर-कर लंबा हाथ।
तुलसीदास गरीब की कोई न पूछे बात ॥

४ दो काटे शरीर को सुखा देते हैं—गरीब की इच्छा और कमजोर का गुस्सा।

५ गरीब वह नहीं, जिसके पास कम है, बल्कि वह है, जो अधिक चाहता है।

—डेनियल

६ गरीब गमार मा खपे नें मोटानो शर्म पडे।

• मोटा कहे मोवाला नो भाजी, श्रोता कहे सौ हाजी-हाजी।

• गरीब बोले ते टपला पडे अने मोटा बोले त्यारे तालिओ पडे।

• सारा ने सागमटे (सपरिवार) नोतरा ने गरीब ने कोई गणे नहि।

—गुजराती कहावतें

७ गरीब री लुगाई गांवरी भोजाई।

• सोहरै ऊट माथे सहु कोई बैठे।

—राजस्थानी कहावतें

बाहर निकल आयी। दोनों युवतियों ने स्वामीजी से कहा कि घर से बाहर निकलने लायक उनके पास कपड़े नहीं हैं। उनके बयान की गवाही स्वयं उनके शरीर दे रहे थे। स्वामीजी को देखकर सिपाही तो भाग गया, मगर विवेकानन्द और उनके साथियों ने उस रात चमारों के चबूतरे में ही लोगों को उपदेश दिया।

—हिन्दुस्तान, ३० अगस्त १९७१ (सम्पादकीय लेख से)

४. अमरीका में १८ साल से कम अवस्था के लगभग एक करोड़ बीस लाख बच्चों के परिवार इतने गरीब हैं कि वे अपने बच्चों के लिए पर्याप्त अन्न-वस्त्र और चिकित्सा की व्यवस्था नहीं कर सकते।

—(राष्ट्रपति जानसन) हिन्दुस्तान, २४ जून १९६८

५. कन्थाखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं,
रिक्तं भूतलमत्र नाथ! भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चौरः प्रविष्टस्तदा,
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

सर्दी से ठिठुरती हुई पत्नी ने कहा—हे नाथ! अपनी गुदड़ी का एक टुकड़ा मुझे दे दो, मेरी गोद में सोये बच्चे को सर्दी लग रही है। यदि गुदड़ी नाममात्र ही बच गयी है तो फिर आप ही इस बच्चे को अपने पास सुला लो। आपके नीचे फूस और पयाल है, मगर मेरे नीचे कुछ भी नहीं है।

संयोग ऐसा हुआ कि पत्नी जब यों अपना रोना रो रही थी, एक चोर चोरी करने के लिए उस घर में आया और पति-पत्नी की दुःखभरी कहानी सुनकर अपनी मति-गति ऐसा भूला कि दूसरों के घरों से चुराई हुई कपड़ों की गठरी भी वहीं छोड़कर रोता हुआ वहाँ से चला गया।

—हिन्दुस्तान, ३० अगस्त १९७१ (सम्पादकीय लेख) पर आधारित

१. शून्यमपुत्रस्य गृह, चिरशून्य नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।
मूर्खस्य दिशा शून्या, सर्वं शून्य दरिद्रस्य ॥
—मृच्छकटिक १।८

अपुत्र का घर शून्य है, सच्चे मित्र के विना व्यक्ति का समय शून्य है, मूर्ख की दिशाएँ शून्य हैं, किन्तु दरिद्र व्यक्ति का सब कुछ शून्य है।

२. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते, दरिद्राणा मनोरथाः ।
बालवैधव्य-दग्धाना, कुलस्त्रीणा कुचा इव ॥
बालविधवापन की ज्वाला मे जले हुए कुलीन स्त्रियो के स्तनों की तरह दरिद्र व्यक्तियो के मनोरथ उठने हैं और मिट जाते हैं।

३. हेतु-प्रमाणयुक्तं, वाक्य न श्रूयते दरिद्रस्य ।
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

दरिद्र व्यक्ति का हेतु-प्रमाणयुक्त वाक्य भी कोई नही सुनता।

४ द्वाविमौ पुरुषौ राजन् ! स्वर्गस्योपरितिष्ठत ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो, दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥
—विदुरनीति १।६३

ये दो आदमी स्वर्ग मे ठहरते हैं—शक्तिशाली होकर क्षमा करनेवाला और दरिद्र होकर दान देनेवाला।

५. को वा दरिद्रो ? हि विशालतृष्ण ।
श्रीमांश्च को ? यस्य समस्ति तोष ॥ —शकर प्रश्नोत्तरी-५

दरिद्र कौन है ? विशाल तृष्णावाला।
श्रीमान् कौन है ? जिसको सन्तोष है, वह।

६. छः दमडी में राजा भोज—

राजा भोज को एक लकड़हारा मिला। राजा ने पूछा—तुम कौन हो ?

लकड़हारा—राजा भोज।

राजा—तुम्हारी आय कितनी है ?

लकड़हारा—छः दमड़ी।

राजा—खर्च का क्या हिसाब है ?

लकड़हारा—एक दमड़ी बोहरों को (माँ-बाप को), एक आसामी को (पुत्री को), एक मंत्री को (स्त्री को), एक खजाने को एवं एक स्वयं को देता हूँ तथा एक अतिथि-सत्कार में लगाता हूँ।

७. छः प्रकार के दरिद्र—

(१) तन से, (२) मन से, (३) धन से, (४) वचन से, (५) बुद्धि से, (६) सदाचार से।



२५ दरिद्रता

१. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।

—घटखर्पर

दरिद्रता का दोष गुणो के समूह का नाश करनेवाला है ।

२. दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ।

—चाणक्यसूत्र २५७

दरिद्रता पुरुष का जीते हुए मरण है ।

३. दारिद्र्यान्मरणाद्वा, मरण मम रोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेश मरण, दारिद्र्यमनन्तक दुःखम् ॥

—मृच्छकटिक १।११

दरिद्रता और मरण की तुलना मे मुझे मरण ही अच्छा लगता है, दरिद्रता नही । क्योकि मरण मे अल्प क्लेश होता है और दरिद्रता मे अनन्त दुःख ।

४. हे दारिद्र्य ! नमस्तुभ्य, सिद्धोऽह त्वत्प्रसादत ।
पश्याम्यह जगत्सर्वं, न मे पश्यति कश्चन ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

हे दरिद्रता ! तुझे नमस्कार है, तेरे प्रसाद से मैं तो सिद्ध हो गया । क्योकि मैं समूचे जगत् को देखता हूँ अर्थात् सबके सामने मांगता रहता हूँ और मुझे कोई भी नही देखता ।

३. दरिद्र और दारिद्र्य का संवाद—

दरिद्र—

५. हे दारिद्र ! मुलक्खणा, इक मुझ बात सुणेह।
म्हे परदेशां संचरा, तू घर-सार करेह।

दारिद्र्य—

संचरस्यो सयणां तणां, छोड़ँ तेह अयाण।
थे परदेशां संचरो (तो) म्हे थिण आगेवाण॥

—राजस्थानी दोहे

६. दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना दिव्यद्रुमैः सेवितं,
दग्धा वायुसुतेन, रावणपुरी लङ्का पुनः स्वर्णभूः।
दग्धः पञ्चशरः पिनाकपतिना तेनाऽप्ययुक्तं कृतं।
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं नहि॥

—भोजप्रबन्ध

वीर अर्जुन ने दिव्यवृक्षों से विभूषित खाण्डववन को भस्म किया, वीर हनुमान ने रावण की स्वर्णमयी लंका नगरी को भस्म किया और महादेव ने भी कामदेव को भस्म करके अनुचित किया। खेद है कि जगत् को सन्तापित करनेवाले इस दारिद्र्य को किसी ने भी भस्म नहीं किया।



आय

१ विभिन्न देशो मे प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय आय—

नाम	आय रुपयो मे
बर्मा	४३०
भारत	५५२
पाकिस्तान (बगालसयुक्त)	५६०
श्रीलंका	६४५
जापान	४२६०
फ्रांस	१०,०००
इगलैण्ड	१०,०८०
आस्ट्रेलिया	११,६४०
अमरीका	२२,०००

—भारतीय अर्थशास्त्र, खण्ड २, पृष्ठ ३३

२. भारी आय—

मुगलेआजम—(फिलम) ३६ सप्ताहो मे सब खर्च निकाल कर १ करोड ७५ लाख का नफा कर चुका।

—रंगभूमि से

३ आयकर (इन्कमटैक्स)—चक्रवर्ती लाभ का २०वा भाग, वासुदेव १०वाँ भाग एवं माडलिक राजा छठवाँ भाग लिया करते थे। वर्तमान भारत सरकार के आय-कर का हिसाब, हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८ के अनुसार इस प्रकार है—

चार हजार रुपये तक की आमदनी पर कर नहीं।

५००० रु० पर	२५० रु०,
१०००० रु० पर	७५० रु०,
१५००० रु० पर	१५०० रु०,
२०००० रु० पर	२५०० रु०,
२५,००० रु० पर	४००० रु०,
३०००० रु० पर	६००० रु०,
५० हजार रु० पर	१६००० रु०,
६० हजार रु० पर	२८००० रु०,
१ लाख रु० पर	४७५०० रु०,
२॥ लाख रु० पर	१५०००० रु०,

ढाई लाख से ऊपर की आमदनी पर ७५ प्रतिशत।

सम्पत्ति कर—५० लाख पर १ लाख ६२ हजार।

मृत्यु कर—३० लाख पर १५ लाख २२ हजार।

—सन् १९६६ की सरकारी रिपोर्ट के आधार पर



व्यय

१. इदमेव हि पण्डित्य, चातुर्यमिदमेव हि ।
इदमेव सुबुद्धित्व-मायादल्पतरो व्यय ॥
यही पण्डितता, चतुरता और सुबुद्धिमत्ता है कि आमदनी से कम खर्च किया जाये ।

2. Cut your coat according to your cloth

कट योर कोट एकोर्डिंग टू योर क्लोथ ।

—अंग्रेजी कहावत

अपनी आमदनी के अनुसार खर्च करो ।

३. खर्च व अदाजे दखल कुन ।

—पारसी कहावत

आमदनी को देख कर खर्च ।

४. बीस पौंड की आमदनी में यदि खर्च उन्नीस पौंड उन्नीस शिलिंग छ पेन्स है तो सुख होगा और यदि बीस पौंड उन्नीस शिलिंग छ पेन्स है तो दुःख होगा ।

—मिकावर

५. आयमनालोच्य व्ययमानो वैश्रवणोऽपि श्रमणायत एव ।

—नीतिवाक्यामृत १८।१०

आमदनी को न देखकर खर्च करनेवाला वैश्रवण (कुबेर) भी फकीर हो जाता है ।

६. नित्यं हिरण्यव्ययेन मेरुरपि क्षीयते।

—नीतिवाक्यामृत ८।५

हमेशा व्यय करने से धन का मेरु भी क्षीण हो जाता है।

७ अस्सी री आवद चौरासी रो खर्च।

- साहजी सूरा-लेखा पूरा।
- घर नग-बहू जबरजंग।
- आनो टोगनी-सो दीखे है।

—राजस्थानी कहावतें

८. सन् १९६८-६९ के बजट के अनुसार भारत-सरकार की कुल आमदनी ४२९९ करोड़, ५९ लाख थी तथा खर्च ४७९९ करोड़, ५९ लाख हुआ।

—हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८

९. संसार का वार्षिक रक्षाव्यय १५ हजार खरब रु०—

संयुक्त राष्ट्र-महासभा ने शस्त्रास्त्र की होड़ तथा सुरक्षा बजट में निरन्तर वृद्धि के सामाजिक और आर्थिक परिणामों के अध्ययन के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित की थी। उसने गत वर्ष अक्तूबर में महासचिव को एक रिपोर्ट दी। उसके अनुसार १९६१ से १९७१ के बीच के दस वर्षों में संसार का रक्षा-व्यय ५०० अरब डालर (३७५० अरब रुपये) से बढ़ कर २००० अरब डालर (१५००० अरब रुपये) वार्षिक हो गया है।

—हिन्दुस्तान १ अगस्त १९७२



२८ अपव्यय-निषेध

१. व ला तुबज़्ज़िर तब्ज़ीरन् ऽ० ।

—कुरान १७।२६

फिज़ूल-खर्ची न करो ।

२ न तो अपना हाथ गर्दन से बाँध रख और न (फिज़ूलखर्ची से) उसे बिलकुल खुला फैलादे ।

—कुरान १७।२९

३. धन कमाने की अपेक्षा खर्च करने में अधिक बुद्धिमत्ता चाहिए। अयोग्य स्थान में खर्च करने से धन का दुरुपयोग होता है ।

४. किसी भी चीज में पैसा लगाने से पहले अपने आप से दो प्रश्न पूछो— क्या मुझे इस चीज की जरूरत है ? क्या इसके बिना मेरा काम चल सकता है ?

—सिडनी स्मिथ

५. जान मुरेनी दो बत्तियाँ जला कर कुछ लिख रहे थे। दो कार्यकर्ता उनसे कुछ चन्दा लेने आये। आते ही एक बत्ती बुझा दी एवं उन्हें आशातीत चन्दा दिया। बत्ती बुझाने का कारण पूछने पर बोले—दो बत्तियाँ लिखने के लिए थी, आपसे बातचीत एक बत्ती के प्रकाश में भी हो सकती है, व्यर्थ व्यय करना मेरे सिद्धान्त से विपरीत है ।



२८ ऋण (कर्ज)

१. ऋण लेने का अर्थ है, दुःख मोल लेना।

—टसर

२. आदमी के लिए कर्ज ऐसा है, जैसा चिड़िया के लिए साँप।

३. न विषविषमित्याहु—र्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति, ब्रह्मस्वं पुत्र-पौत्रकम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डार, पृष्ठ १०२

विष विष नहीं है, वास्तविक विष ऋण है। क्योंकि विष तो केवल खाने वाले को मारता है, किन्तु ऋण उसके पुत्र-पौत्रों को भी।

४. ऋणी होना ही सबसे बड़ी निर्धनता है।

—एम. जी. सोइबर

५. ऋण लेनेवाला ऋण देनेवाले का दास है।

६ अधमर्णो ग्राहकः स्यादुत्तमर्णस्तु दायकः।

—हैमकोष-३।५४६

ऋण लेनेवाला अधमर्ण और देनेवाला उत्तमर्ण कहलाता है।

७ स्त्रियों को सोचना चाहिए कि हमारी वेशभूषा एवं शृङ्गार के लिए पतिदेव कर्जदार तो नहीं बन रहे हैं?

८, सरकार चाहे तीन वर्ष बाद मुकदमा चलने दे तथा वेतन रोककर चाहे कोई दिवालिया बनकर ऋणमुक्त हो जाय, लेकिन धर्मशास्त्रानुसार अनन्त जन्मों तक भी कर्ज को चुकाये बिना प्राणी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता।

९. एक व्यापारी को बड़ा घाटा लगा। वह राजा भोज के यहां से एक बड़ी रकम ऋण के रूप में लेकर घर की ओर चला। रास्ते में वह एक रात तेली के घर रुका। व्यापारी पशु-भाषा समझता था। उसने तेली के दो बैलों की बातें सुनी। एक ने कहा—मैं इस तेली का कर्ज सुबह तक चुका कर इस योनि से छूट जाऊंगा। दूसरे ने कहा—यदि १००० रु० की शर्त पर राजा भोज के बैल की मेरे साथ दौड़ हो जाय तो जीत जाऊं और मैं भी ऋण-मुक्त हो जाऊं। पहला बैल अगले दिन सुबह व्यापारी के सामने ही मर गया। उसके मरते ही व्यापारी ने रात का सारा हाल तेली को कह सुनाया। यह सुनते ही तेली ने राजा के बैल के साथ दौड़ की होड़ लगाई। दौड़ में तेली का बैल जीत गया। १००० रु० तेली को मिल गये। रुपये मिलते ही बैल मर गया। यह देखकर व्यापारी ने राजा को रुपये लौटाते हुए बैलों का सारा हाल सुनाया और कहा—राजन्! इस जन्म में तो मैं यह कर्ज हरगिज चुका नहीं सकता और अगले जन्म के लिए कर्ज का बोझ उठाना मुझे उचित नहीं लगता। —कल्याण-सत्कथा अंक से

१०. अधिक ऋणवाले—

(क) वहु दुखिया ने दुख नहीं, ने वहु ऋणीया ने ऋण नहिं।

—गुजराती कहावत

(ख) चड़िया सौ ते नट्ठा भउ। —पंजाबी कहावत

११. भारत पर विदेशों का ऋण—

१९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ, उस समय भारत का विदेशों में १,७०० करोड़ रुपये जमा थे, अर्थात् प्रत्येक भारतवासी ५० रुपये का पावनेदार था। 'स्टेट्समैन' १२ जुलाई १९७१ के अनुसार अप्रैल १९७१ के अन्त तक भारत ६,६०२ करोड़ रुपये का विदेशी कर्जदार बन चुका है अर्थात प्रत्येक भारतीय १८० रुपये का देनदार हो चुका है।

—नवभारत टाइम्स १६ नवम्बर १९७१

(श्री रामेश्वर टांटिया के लेख से)



उधार

१. उधार न दो और न लो। देने से पैसा और मित्र दोनों खो जाते हैं तथा लेने से मितव्ययता मानो कुण्ठित हो जाती है।

—शेक्सपियर

२. उधार देने के विषय में—

(क) नटे विटे च वेश्यायां, द्यूतकारे विशेषतः।
उद्धारकं न दातव्यं, मूलनाशो भविष्यति॥
नट, विट, वेश्या और जुआरी—इनको उधार (ऋण) धन नहीं देना चाहिए, देने से मूलधन का ही नाश हो जाएगा।

(ख) रिश्तेदारों को दिए, रुपये अगर उधार।
तो समझो ! दुश्मन बने, अब वे रिश्तेदार॥

—दोहासंदोह

(ग) उधारीने नांते गेले हात गेले।

—मराठी कहावत

उधार देना अपना नुकसान करना है।

(घ) उधार दीजे र, दुश्मण कीजे।
- उधार दियो र, गिराक गमायो।
- उधार खाणो सांई मौत मरणो है।

—राजस्थानी कहावतें

३. उधार लेने के विषय में—

(क) उधार मांगना और भीख मांगने में ज्यादा अन्तर नहीं है।

—लैसिंग

(ख) उधार लिया हुआ पैसा गम का सामान बन जाता है।

(ग) जिसे उधार लेना प्रिय लगता है, उसे अदा करना अप्रिय लगता है।

(घ) फूस का तपना और उधार का खाना।

—हिन्दी कहावतें

(ङ) उधारनी मा ने कूतरा परणे।

—गुजराती कहावत

(च) उधार घर की हार।

—राजस्थानी कहावत

४. नगद और उधार—

(क) ए बर्ड इन हैंड इज वर्थ टू इन दि बुश।

—अंग्रेजी कहावत

नौ नकद न तेरह उधार।

(ख) सपनै रा सात, परतख रा पांच।

—राजस्थानी कहावत

(ग) रोकड़ा आज नें काले उधार।

● उधार तो कहे ओ! ऊणं वैसीने रो,
नगद कहे जी! जी! खा खीचडी नें घी।

—गुजराती कहावतें

(घ) मांग खाओ, कमा खाओ, चाहे उधार खाओ।

—राजस्थानी कहावत

५. उधार के प्रशंसक—

(क) उधारे हाथी बंधाय, रोकड़े बकरी पण न बंधाय।

—गुजराती कहावत

(ख) नाग नगारा नीरजै, बड-पीपल री साख।
नटिया मुन्नो नेणसी, ताको देण तलाक।।
(उधार लेकर न देनेवालों के लिए)



१. मैनी ए लिटल मेक्स ए मिकल।

—अंग्रेजी कहावत

बूंद-बूंद से तालाब भर जाता है।

२ अन्दक अन्दक बसेले शवद व कतरा-कतरा सैले गरदद।

—फारसी कहावत

बूंद-बूंद से नाला और कण-कण से मन।

३. जलबिन्दुनिपातेन, क्रमशः पूर्यते घटः।

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

जल की एक-एक बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है।

४. कालेन संचीयमानः परमाणुरपि जायते मेरुः।

—नीतिवाक्यामृत १।३०

संचय करते-करते कालान्तर में परमाणु भी मेरु बन जाता है।

५. कोड़ी-कोड़ी संचतां कणिगो थाय, कांकरे-कांकरे पाल बंधाय, टीपे-टीपे सरोवर भराय।

—गुजराती कहावत

६ कोड़ी-कोड़ी करतां लख लागै।

—राजस्थानी कहावत

७ कर कसर ने बीजो भाई ने संघर (संग्रह) त्रीजो भाई।

—गुजराती कहावत

८ धन का सहजसंग्रह करने के लिए गृहणियाँ घर-खर्च में से कुछ बचाती हैं, गृहस्थलोग जीवन-बीमा करवाते हैं, माँ-बाप बच्चों के 'गोलख' बनाते हैं तथा सरकार और बड़े-बड़े व्यापारी लोग अपने नौकरों के वेतन का कुछ भाग काटते हैं। अल्पबचतयोजना का भी मूल ध्येय यही है।



३२ ब्याज

१. ब्याज ने घोड़ा न पहोंचे।

● ब्याज ने विसामो नहि।

—गुजराती कहावतें

२. मिनख कमावे चार पोर, ब्याज कमावे आठ पोर।

—राजस्थानी कहावत

३. ब्याज भला-भलानी लाज मूकावे।

—गुजराती कहावत

४. ६५ वर्ष पूर्व गुरुग्राम ने मकान गिरवी रखकर १९५९ में उसे छुड़ाने गया। तब ब्याज के हिसाब से २२ करोड़ ३८ लाख ६७ हजार ७८३ रुपये हुए।

५. [illegible] लेखा कोडी नो [illegible] राग (आनो)।
[illegible] सुं [illegible]।

—गुजराती कहावतें

६. मूलगूं ब्याज प्यारो।

—राजस्थानी कहावत

७. हबीब अजमी एक दिन [illegible] लकड़ी उधार ले आये। [illegible] में आग लगकर सभी [illegible]। हबीब ब्याज का धन्धा छोड़कर [illegible] हो गये।

—"इस्लाम धर्म क्या कहता है?" के आधार पर

☼

चौथा कोष्ठक

१ आत्मा

१. जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया। त पडुच्च पडिसखाए॥

—आचाराग-५।५

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। जिससे जाना जाता है, वह आत्मा है। जानने की इस शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति होती है।

२ जो अहंकारो, भणित अप्पलक्खणं।

—आचाराग चूर्णि-१।११

यह जो अन्दर मे 'अह' की चेतना है, यह आत्मा का लक्षण है।

३. यत्राहमित्यनुपरितप्रत्यय, स आत्मा।

—नीतिवाक्यामृत ६।४

जहा "मै हूँ" ऐसा सुदृढ निश्चय हो, वह आत्मा है।

४. जिस हस्ती को वेदान्ती ब्रह्म कहते है, भक्त भगवान कहते है, उसे योगी आत्मा कहते है।

—रामकृष्ण

५ जिसे अपने जीवन के लिए मन, प्राण, और शरीर की गर्ज नही, अपने ज्ञान के लिए मन और इन्द्रियो की गर्ज नही और अपने आनन्द के लिए पदार्थमात्र के बाह्यस्पर्श की गर्ज नही, उसी तत्त्व का "आत्मा" नाम दिया गया है।

—अरविंद घोष

६. अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परे सिया ?

—धम्मपद-१२।४

आत्मा ही आत्मा का नाथ (स्वामी) है, दूसरा कौन उसका नाथ हो सकता है ?

७. जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लियजीव तारिसा होंति ।

—नियमसार-४७

जैसी शुद्ध आत्मा सिद्धों (मुक्त आत्माओं) की है। मूलस्वरूप से वैसी ही संसारस्थ प्राणियों की है।

८. हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।

—भगवती ७।८

आत्मा की दृष्टि से हाथी और कुंथुआ—दोनों की आत्मा एक समान है।



२ आत्मा का स्वरूप

१. अरुवी सत्ता, अपयस्स पय नत्थि ।

—आचारांग-५।६

आत्मा का मूलस्वरूप अरूपी है। उसको कहने के लिए कोई शब्द नही है। वास्तव मे वह अवाच्य है।

२. सव्वे सरा नियट्टंति,
तक्का जत्थ न विज्जइ ।
मई तत्थ न गाहिया ॥

—आचारांग ५।६

आत्मा के वर्णन मे सबके सब शब्द निवृत्त हो जाते है—समाप्त हो जाते हैं। वहा तर्क की गति भी नहीं हैं और न बुद्धि ही उसे ठीक तरह ग्रहण कर पाती है।

३. नैषा तर्केण मतिरापनेया ।

—कठोपनिषद्-२।६

यह आत्म-ज्ञान कोरे तर्क-वितर्कों से झुठलाने जैसा नहीं है।

४. अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्य. सर्वगतोऽक्रिय ।
अकर्ता निर्गुण सूक्ष्म, आत्मा कपिलदर्शने ।

—स्याद्वादमंजरी १५ टीका

सांख्यदर्शन मे आत्मा अरूपी है, चेतनायुक्त है, कर्मफल भोगनेवाली है, नित्य है, सर्वव्यापी है, क्रियाशून्य है, अकर्ता है, निर्गुण है और सूक्ष्म है।

५. से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे।

—आचारांग-५।६

आत्मा न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है।

६ आत्माऽगृह्यो, न हि गृह्यते, अशीर्यो न हि शीर्यते।
असंगो, न हि सज्यते, असितो न हि व्यथते, न रिष्यते॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-३।९।२६

आत्मा अग्राह्य है, अतः वह पकड़ में नहीं आता, आत्मा अशीर्य है, अतः वह क्षीण नहीं होता, आत्मा असंग है, अतः वह किसी से लिप्त नहीं होता, आत्मा असित है—बन्धनरहित है, अतः वह व्यथित नहीं होता, नष्ट नहीं होता।

७ नो इन्द्रियग्गेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चं।

—उत्तराध्ययन-१४।१९

आत्मा आदि अमूर्त तत्त्व इन्द्रियग्राह्य नहीं होते और जो अमूर्त होते हैं, वे अविनाशी-नित्य भी होते हैं।

८. अणिंदियगुणं जीवं, दुन्नेयं मंसचक्खुणा।

—दशवैकालिक-निर्युक्ति भाष्य ३४

आत्मा के गुण अतिन्द्रिय-अमूर्त हैं, अतः इन्हें चर्म-चक्षुओं से देख पाना कठिन है।



३ आत्मा की शाश्वतता आदि

१ नत्थि जीवस्स नासो त्ति ।

—उत्तराध्ययन २।२७

आत्मा का कभी नाश नही होता ।

२. णिच्चो अविणासि सासओ जीवो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति-भाष्य ४२

आत्मा नित्य है, अविनाशी है एव शाश्वत है ।

३. न जायते म्रियते वा कदाचिद्, नायं भूत्वा भविता वा न भूय ।
अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥
नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुत ॥२३॥

—गीता अ० २

यह आत्मा न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है अथवा न यह आत्मा होकर के दुबारा होने वाली है। क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है ॥२०॥

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न इसको आग जला सकती है न इसको जल गीला कर सकता है और न इसको वायु सुखा सकती है ॥२३॥

४. आत्मा की परिमितता—

(क) वालाग्रशतभागस्य, शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीव स विज्ञेय, न चानन्त्याय कल्पते ॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।९

बालाग्र के सौवें भाग के सौवें भाग जितना जीव होता है, वह अनन्त परिणामवाला है।

(ख) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ऽन्तरात्मा।
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद्-३।१३

अङ्गुष्ठ मात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परमात्मा मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है।

५ आत्मा की अलिङ्गिता—

(क) न इत्थी, न पुरिसे न, अन्नहा।

—आचारांग-५।६

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है।

(ख) नैव स्त्री न पुमानेष, न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते, तेन-तेन स युज्यते॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।१०

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न यह नपुंसक है। जो-जो शरीर धारण करता है, उस-उस नाम से युक्त हो जाता है।

(ग) वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता २।२२

जैसे—मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नए शरीरों को धारण कर लेता है।

४ आत्मा का कर्तृत्व

१. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहाधेणू, अप्पा मे नन्दणं वण ॥३६॥
अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥३७॥

—उत्तराध्ययन २०

मेरी (पाप मे प्रवृत्त) आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष के समान (कष्टदायी) है। और (सत्कर्म मे प्रवृत्त) कामधेनु मेरी आत्मा ही एव नन्दनवन के समान (सुखदायी) भी है।३६।

आत्मा ही सुख-दुःख की कर्त्ता और भोक्ता है। सदाचार मे प्रवृत्त आत्मा मित्र के तुल्य है और दुराचार मे प्रवृत्त होने पर वही शत्रु है।३७।

२. आत्मानमेव मन्येत, कर्त्तारं सुख-दुःखयो।

—चरकसंहिता

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा को ही सुख-दुःख की कर्त्ता माने।

३. स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

—चाणक्यनीति ६।६

आत्मा स्वयं कर्म करती है और स्वयं उसका फल भोगती है। स्वयं संसार मे भ्रमण करती है और स्वयं उससे मुक्त होती है।

४. से सुयं च मे अज्झत्थियं च मे,
बंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव ।

—आचारांग-५।२

मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्धन की मुक्ति आत्मा के अन्दर ही है ।

५ उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे, वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

—गीता-अ० ६

आत्मसंयम द्वारा आत्मा का उद्धार करो । कुत्सित प्रवृत्तियों द्वारा आत्मा को विषाद—दु:ख मत पहुँचाओ । आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है ॥५॥

जिसने आत्मा को अर्थात् मन-इन्द्रियों को आत्म-संयम द्वारा जीत लिया है, उसके लिए उसकी आत्मा बन्धु है और जिसके मन-इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं हैं, उसके लिए उसकी आत्मा शत्रु है ॥६॥

६. एगप्पा अजिए सत्तू ।

—उत्तराध्ययन-२३।३८

स्वयं की अविजित—असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है ।

७. न तं अरी कंठछित्ता करेई,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।

—उत्तराध्ययन-२०।४८

गर्दन काटनेवाला शत्रु भी उतनी हानि नहीं करता, जितनी हानि दुराचार में प्रवृत्त अपनी आत्मा कर सकती है ।



५ आत्मा का दर्शन

१. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेन इदं सर्वं-विदितम् ॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-२।४।५

आत्मा का ही दर्शन करना चाहिए, आत्मा के सम्बन्ध में ही सुनना चाहिए, मनन-चिन्तन करना चाहिए और आत्मा का ही निदिध्यासन-ध्यान करना चाहिए। एकमात्र आत्मा के ही दर्शन से, श्रवण से, मनन-चिन्तन से और विज्ञान से—सम्यक् जानने से सब कुछ जान लिया जाता है।

२. आत्मावलोकने यत्न, कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता।

—योगवाशिष्ठ ५।७५।४६

कल्याण की इच्छा रखनेवाले को आत्मदर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

३ पुष्पे गन्धं तिले तैलं, काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे, पश्यात्मानं विवेकतः॥

—चाणक्य नीति ७।२१

जैसे—पुष्प में गन्ध, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि और ईख में गुड़ विद्यमान है, वैसे ही देह में आत्मा विद्यमान है। उसे विवेकपूर्वक देखो।

४. अणोरणीयान् महतो महीया-नात्मा गुहाया निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतु पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमीशम् ॥
—कठोपनिषद् २।२०

आत्मा अणु से भी अणु (छोटी) है और महान् से भी महान् (बड़ी) है। प्रत्येक प्राणी के भीतर छिपी है। जो निरीह है, उसे अपने मन और इन्द्रियों की शक्ति से इसके दर्शन होते हैं।

५. रागद्वेषादि कल्लोलै-रलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्व, तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥
—समाधिशतक ३५

राग-द्वेषादि की कल्लोलों से जिसका मनरूप जल चंचल नहीं होता, वही व्यक्ति आत्मा के तत्त्व को देख सकता है, दूसरा नहीं।

६. नष्टे पूर्वविकल्पे तु, यावदन्यस्य नोदयः।
निर्विकल्पकचैतन्यं, स्पष्टं तावद्विभासते ॥
—लघुवाक्यवृत्ति

पूर्व विकल्प नष्ट होने के बाद, जब तक दूसरा विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उस समय तक निर्विकल्प आत्मा स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होती है।

७. शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः,
समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति।
—बृहदारण्यक उपनिषद् ४।४।२३

शम, दम, उपरति, तितिक्षा (श्रद्धा) तथा समाधानरूप षट्सम्पत्तियुक्त जिज्ञासु से आत्मा का आत्मा से दर्शन करता है।



६ आत्मा का ज्ञान

१. एतदात्मविज्ञानं पाण्डित्यम् ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् ३।५।१

वस्तुतः आत्म ज्ञान ही पाण्डित्य है ।

२. अज्ञातस्वरूपेण, परमात्मा न बुध्यते ।
आत्मैव प्राग् विनिश्चेयो, विज्ञातुं पुरुष परम् ॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ २१६

अपने स्वरूप को नहीं जाननेवाला परमात्मा को नहीं जान सकता । अतः परमात्मा को जानने के लिए पहले अपनी आत्मा को ही निश्चय-पूर्वक जानना चाहिए ।

३. वाग्वैखरी शब्दझरी, शास्त्र—व्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्, भुक्तये न तु मुक्तये ॥
अविज्ञाते परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥

—विवेकचूडामणि-६०-६१

आत्मज्ञान के बिना विद्वानों की वाक्कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता—ये सब चीजें भोग का ही कारण हो सकती हैं, मोक्ष का नहीं ॥६०॥

आत्मतत्त्व न जानने पर शास्त्राध्ययन व्यर्थ है तथा उसे जान लेने पर भी शास्त्राध्ययन व्यर्थ है ॥६१॥

४. ज्यां लगे आतम तत्त्व चीन्ह्यो नहीं, त्यां लगे साधना सर्व झूठी ।

—नरसी भगत

५. वद-णियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जे, णिव्वाण ते ण विंदंति ॥

—समयसार-१५३

भले ही व्रत-नियम को धारण करें, तप और शील का आचरण करें, किन्तु जो परमार्थरूप आत्म-बोध से शून्य हैं, वे कभी निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते ।

६ आत्मज्ञानात् परं कार्यं, न बुद्धौ धारयेच्चिरम् ।
कुर्यादर्थवशात् किंचिद् वाक्कायाभ्यामतत्पर ॥

—समाधिशतक ५०

आत्मज्ञान से अतिरिक्त कोई भी कार्य का चिन्तन नहीं करना चाहिए, प्रयोजनवश कोई कार्य करना ही पड़े तो अनासक्त रहकर केवल वचन-काया द्वारा करना चाहिए ।

७ अगर मुझे अपनी फिलॉसफी कोई एक शब्द में कहने को कहे, तो मैं कहूँगा—'आत्मनिर्भरता'—'आत्मज्ञान' ।

—रामतीर्थ

८. दुक्खे णज्जइ अप्पा ।

—मोक्षपाहुड-६५

आत्मा कठिनाई से जानी जाती है ।

९ तस्यै तपो दम कर्मेति प्रतिष्ठा ।

—केनोपनिषद्-४:८

आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा अर्थात् अधिकार तीन बातों पर होता है—तप, दम (इन्द्रियनिग्रह) तथा धर्म-कर्म ।

१०. आत्मज्ञान के लिए इन्द्र को १०१ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालना पड़ा।

—छान्दोग्योपनिषद् ८

११. कह सो घिप्पइ अप्पा ? पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा।

—समयसार २९६

यह आत्मा किस प्रकार जानी जा सकती है ? आत्म-प्रज्ञा अर्थात् भेद-विज्ञानरूप बुद्धि से ही जानी जा सकती है।

१२ आत्मविद्या ब्राह्मणों में क्षत्रियों से आई हो—ऐसा सभव है। छान्दोग्योपनिषद् (५।३।७) में अपने पुत्र 'श्वेतकेतु' से प्रेरित होकर 'आरुणि' 'पचाल के राजा प्रवाहण' के पास गया। आत्मविद्या देते हुए राजा ने कहा—मैं तुम्हें जो आत्मविद्या और परलोकविद्या दे रहा हूं, उस पर आज तक क्षत्रियों का अधिकार रहा है, आज पहली बार यह ब्राह्मणों के पास जा रही है।

भागवत–११।२।१६ मे ऋषभप्रभु को सर्वक्षत्रियों का पूर्वज कहा है। (ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठ, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्) यही ऋषभप्रभु भरतक्षेत्र मे जैनधर्म के आदिकर्त्ता है। इन्हीं से आत्मविद्या का प्रारम्भ हुआ है।

१३. षट्दर्शन ना जुआ-जुआ मता, माही माही न्याया खता,
एक नों थाप्यो बीजो हणे, अन्यथी आपने अधिको गणे।
अवला ! एज अधारो कुओ, झगडो भागी ने कोई न मुओ ॥१॥
देहाभिमान हतो पा सेर, विद्या भणता वाध्यो सेर,
चर्चा वधता अधमण थयो, गुरु थया थी मण मां गयो।
अखा ! एम हलका थी भारी होय, आत्मज्ञान मूल गो खोय॥२॥

—अखा भगत के गुजराती पद्य



७ आत्मज्ञ

१. यः आत्मवित् स सर्वविद् ।

जिसने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया ।

२. तरति शोकमात्मविद् ।

—छांदोग्योपनिषद् ७।१।३

जो आत्मा को—अपने आपको जान लेता है, वह दुःख-सागर को तैर जाता है ।

३. तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो,
आत्मानं धीरमजरं युवानम् ।

—अथर्ववेद-१०।८।४४

जो धीर, अजर, अमर, सदा तरुण रहनेवाली आत्मा को जानता है, वह कभी मृत्यु से नहीं डरता ।

४. नीतिज्ञा नियतिज्ञा, वेदज्ञा, अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः, स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः ॥

जगत में नीति के जानकार हैं, नियति-कर्मव्यापार के जानकार हैं, वेदों व अन्य शास्त्रों के जानकार हैं, ब्रह्मज्ञानी भी मिल जाते हैं, लेकिन आत्मा को जाननेवाले विरले हैं ।

५. पठन्ति चतुरो वेदान्, धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानं नैव जानन्ति, दर्वी पाकरसं यथा ॥

—चाणक्यनीति १५।१२

जैसे—भोजन मे रहता हुआ भी चाटू उसके रस को नही जानता, उसी प्रकार वहुत से व्यक्ति चारो वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढते हैं, फिर भी आत्मा का ज्ञान नही कर पाते।

६ श्रवणायापि वहुभिर्यो न लभ्य, शृण्वन्तोऽपि वहवो य न विद्यु.।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्ट।

—कठोपनिषद् २।७

यह आत्मज्ञान अत्यन्त गूढ है। वहुतो को तो यह पहले सुनने को भी नही मिलता, वहुत से लोग सुन तो लेते हैं, किन्तु कुछ जान नही पाते। ऐसे गूढतत्त्व का प्रवक्ता कोई आश्चर्यमय विरला ही होता है, उसको पानेवाला तो कोई कुशल ही होता है और कुशल गुरु के उपदेश से कोई विरला ही उसे जान पाता है।

७ जे अज्झत्थ जाणइ, से वहिया जाणइ,
जे वहिया जाणइ, से अज्झत्थ जाणइ।

—आचाराग १।७

जो अध्यात्म को (आत्मा के मूलस्वरूप को) जानता है वह बाह्य को (पुद्गलादि द्रव्यो को) जानता है और जो बाह्य-पदार्थो को जानता है, वह आत्मा के मूलस्वरूप को—अध्यात्म को जानता है।

८. ण याणति अप्पणो वि, किन्नु अण्णेसि।

—आचारांगचूर्णि-१।१।३

जो आत्मा को नही जानता, वह दूसरो को क्या जानेगा?



८ आत्मरक्षा

१. आत्मरक्षण कुदरत का सबसे पहला कानून है और आत्मबलिदान सौम्यता का सर्वोच्च नियम।

२. अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ॥

—दशवैकालिक, चूलिका २ गाथा १६

सब इन्द्रियों को वश में करके आत्मा की पापों से सदा रक्षा करनी चाहिए।

३ आपदर्थे धनं रक्षेद्, दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्, दारैरपि धनैरपि॥

—चाणक्यनीति १।६

आपत्काल के लिए धन की रक्षा करो। धन से स्त्री की रक्षा करो तथा स्त्री एवं धन से भी सदा आत्मा की रक्षा करो।

४. अत्तहियं खु दुहेण लब्भइ।

—सूत्रकृतांग २।२।३०

आत्महित का अवसर मुश्किल से मिलता है।

५. आयत्ताए परिव्वए।

—सूत्रकृतांग १।१।३२

आत्मरक्षा के लिए संयमशील होकर विचरें।

६. आत्मरक्षायां कदाचिदपि न प्रमाद्येत।

—नीतिवाक्यामृत २५।७२

मनुष्य को आत्मरक्षा करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए।

७. त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

—चाणक्यनीति ३।१०

कुलरक्षा के लिए एक व्यक्ति का, ग्रामरक्षा के लिए एक कुल का और देशरक्षा के लिए एक ग्राम का त्याग कर देना चाहिए। किन्तु आत्मरक्षा के लिए यदि समूची पृथ्वी का भी त्याग करना पड़े, वह भी कर देना चाहिए।

८. यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्॥

—इष्टोपदेश १६

जो कार्य आत्मोपकारी है, वह शरीर का अपकार करनेवाला है एवं जो कार्य शरीरोपकारी है, वह आत्मा का अपकार करनेवाला है।



८

आत्मरक्षक

१०. (क) अप्पाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो।

—उत्तराध्ययन ४।१०

अपनी आत्मरक्षा करनेवाला अप्रमादी होकर विचरे।

(ख) तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवइ, तुसिणीए वा सिया, उट्ठित्ता वा आया एगंतमवक्कमेज्जा।

—स्थानांग ३।३।१७०

तीन प्रकार के आत्मरक्षक कहे हैं—(१) अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग करनेवाले अनार्य पुरुष को धर्मोपदेश देनेवाला, (२) उपदेश देने पर न माने तो चुप रहकर ध्यान करनेवाला, (३) ध्यान न कर सके तो विधियुक्त अन्य एकान्त स्थान में चला जानेवाला।



१० आत्मसम्मान

१. आत्म-सम्मान दुर्गुणों को वश में रखने की पहली लगाम है।

२. आत्म-सम्मान समस्त गुणों की आधारशिला है।

—सरजॉन हरशल

३. सब बातों से पहले आत्म-सम्मान है।

—पीथागोरस

४. यदि आत्म-सम्मान खो दिया तो सब कुछ खो दिया।

५. सर्वत्र स्वस्यात्मानुमानेन वर्तितुं युक्तम्।

—विक्रमोर्वशीयनाटिका

सभी स्थितियों में मनुष्य को अपनी आत्मा के अनुमान से ही व्यवहार करना चाहिए।

६. वित्तात् पुत्र प्रियः पुत्रात्, पिण्ड' पिण्डात् तथेन्द्रियम्।
इन्द्रियाच्च प्रिय. प्राण., प्राणादात्मा पर प्रिय॥

—पञ्चदशी

धन से पुत्र, पुत्र से शरीर, शरीर से इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से प्राण प्यारे हैं। किन्तु आत्मा प्राणों से भी अधिक प्रिय मानी गई है।

७. जिओ और जो चाहे जैसे जिओ, पर अन्तर-आत्मा को शर्मिन्दा मत होने दो।

८. धूल से नीचा और कौन होगा? पर वह भी अपना तिरस्कार नहीं सहती। लात मारने से सिर पर चढ़ती है।

—रामचरित मानस

९ आत्मरक्षक

१०. (क) अप्पाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो ।

—उत्तराध्ययन ४।१०

अपनी आत्मरक्षा करनेवाला अप्रमादी होकर विचरे ।

(ख) तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवइ, तुसिणीए वा सिया, उट्ठित्ता वा आया एगतमवक्कमेज्जा ।

—स्थानांग ३।३।१७०

तीन प्रकार के आत्मरक्षक कहे हैं—(१) अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग करनेवाले अनार्य पुरुष को धर्मोपदेश देनेवाला, (२) उपदेश देने पर न माने तो चुप रहकर ध्यान करनेवाला, (३) ध्यान न कर सके तो विधियुक्त अन्य एकान्त स्थान में चला जानेवाला ।



१० आत्मसम्मान

१. आत्म-सम्मान दुर्गुणों को वश में रखने की पहली लगाम है।

२. आत्म-सम्मान समस्त गुणों की आधारशिला है।

—सरजॉन हरशल

३. सब बातों से पहले आत्म-सम्मान है।

—पीथागोरस

४. यदि आत्म-सम्मान खो दिया तो सब कुछ खो दिया।

५. सर्वत्र स्वस्यात्मानुमानेन वर्तितुं युक्तम्।

—विक्रमोर्वशीयनाटिका

सभी स्थितियों में मनुष्य को अपनी आत्मा के अनुमान से ही व्यवहार करना चाहिए।

६. वित्तात् पुत्र. प्रियः पुत्रात्, पिण्ड. पिण्डात् तथेन्द्रियम्।
इन्द्रियाच्च प्रियः प्राण, प्राणादात्मा पर प्रिय॥

—पञ्चदशी

धन से पुत्र, पुत्र से शरीर, शरीर से इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से प्राण प्यारे हैं। किन्तु आत्मा प्राणों से भी अधिक प्रिय मानी गई है।

७. किसी ओर जी चाहे जैसे जिओ, पर अन्तर-आत्मा को शर्मिन्दा मत होने दो।

८. धूल से नीचा और कौन होगा? पर वह भी अपना तिरस्कार नहीं सहती। लात मारते ही सिर पर चढ़ती है।

—रामचरित मानस



११ आत्मविश्वास

१. आत्मविश्वास वीरता की जान है।

—एमर्सन

२. आत्मविश्वास जैसा दूसरा मित्र नहीं, आत्मविश्वास ही भावी उन्नति का मूल पाया है।

३. महान कार्य करने के लिए जरूरी चीज है—आत्मविश्वास।

—जानसन

४. जहां भी आप जाएं, आत्मविश्वास साथ लेते जाएं।

५ जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ,
चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।

—दशवैकालिक-चूलिका १।१६

जिसकी आत्मा सुनिश्चित होती है, वह देह को छोड़ देता है पर धर्म-शासन को नहीं छोड़ता।

६ जिसमें आत्मविश्वास नहीं है, उसका अन्य चीजों के प्रति विश्वास कैसे उत्पन्न हो सकता है?

—विवेकानन्द

७. जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोगं अब्भाइक्खइ।

—आचारांग-१।४।२

जो व्यक्ति आत्मा का अपलाप (अस्वीकार) करता है, वह लोक का अपलाप करनेवाला है।

८. आत्मा का अस्तित्व—ये शब्द पुनरुक्त हैं, कारण आत्मा माने अस्तित्व ही है।

—विनोबा

९. आत्मविकास—

आत्मविकास का पौधा सांसारिक विषयवासना की भूमि पर नहीं उगता।

—रामतीर्थ

१०. आत्मशक्ति—

नो निन्हवेज्ज वीरियं।

—आचारांग ५।३

आत्मशक्ति को कभी मत छिपाओ।



१३ आत्मशुद्धि

१. छाती पर गोली झेलने से भी आत्मशुद्धि कठिन है।

—गांधी

२. आत्मशुद्धि की सबसे पहली सीढ़ी यह है कि हम अपनी अशुद्धि को कबूल करें।

—गांधी

३. आत्मानं स्नपयेन्नित्यं, ज्ञाननीरेण चारुणा।

—तत्त्वामृत

ज्ञानरूप पवित्र जल से आत्मा को नहलाओ।

आत्मा को नरम सोना बनाओगे, तब ही उसमें दया-शील-सन्तोष आदि हीरे जड़े जायेंगे।

४. जैसे—पढ़ने-लिखने का, देखने-सुनने का, बोलने-चलने का तथा खाने-पीने का मार्ग गरीबों एवं श्रीमंतों के लिए एक ही होता है। उसी प्रकार आत्म-शुद्धि का मार्ग भी सबके लिए सदृश है।

५. आत्मशुद्धि का मार्ग—अन्धे, बहरे, गूंगे और लंगड़े बनो (पर स्त्री-पर-धन एवं परदोष मत देखो! परनिन्दा-स्वप्रशंसा मत सुनो! कर्कश एवं असत्य मत बोलो तथा दुर्व्यसनों में मत जाओ!) तुम्हारी आत्मा शुद्ध हो जाएगी।

—'उपदेशसुमनमाला' से संकलित

६ सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये।

—धम्मपद-१२।९

शुद्धि और अशुद्धि अपनी आत्मा में ही होती है, दूसरा कोई किसी अन्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

७ क्वचित् कषायैः क्वचन प्रमादैः, कदाग्रहैः क्वापि च मत्सराद्यैः।
आत्मानमात्मन् ! कलुषीकरोषि, बिभेषि धिङ् नो नरकादधर्मा॥
—अध्यात्म-कल्पद्रुम

कभी कषायों द्वारा, कभी प्रमादों द्वारा, कभी कदाग्रह एवं मत्सरादि दुर्गुणों द्वारा तू अपनी आत्मा को कलुषित कर रहा है। तुझे धिक्कार है कि तू नरक से नहीं डरता।



१४ आत्मदमन

१. पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमुच्चसि।

—आचारांग ३।३

हे पुरुष ! अपनी आत्मा का ही निग्रह कर ! ऐसा करने से ही तू दुखों से मुक्त होगा।

२. कसेहि अप्पाणं जरेहि अप्पाणं !

—आचारांग ४।३

आत्मा को कृश करो अर्थात् तन-मन को हल्का करो।
आत्मा को जीर्ण करो अर्थात् भोगवृत्ति को जर्जर करो।

३. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥
वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य॥

—उत्तराध्ययन १।१५-१६

विपरीत मार्ग मे जानेवाली आत्मा का ही दमन करो, क्योकि आत्म-दमन बहुत कठिन है। आत्मा का दमन करनेवाला इसलोक-परलोक मे सुखी होता है। १५।

परवश होकर दूसरो से वध-बन्धनो द्वारा दमन किए जाने की अपेक्षा अपनी इच्छा से संयम-तप द्वारा आत्मा का दमन करना ही मेरे लिये श्रेष्ठ है। १६।

४. आत्मानं भावयेन्नित्यं, ज्ञानेन विनयेन च ।

—तत्त्वामृत

आत्मा को ज्ञान और विनय से सदा भावित करते रहना चाहिए ।

५. रागद्वेषौ प्रवृत्ति स्या-न्निवृत्तिस्तन्निरोधनम् ।
तौ च बाह्यार्थसबद्धौ, तस्मात् तांश्च परित्यजेत् ॥

—आत्मानुशासन

राग-द्वेष प्रवृत्तिरूप है एव उनका निरोध करना निवृत्ति है । राग-द्वेष बाह्यवस्तुओं से सम्बन्धित है अत. बाह्यवस्तुओं का परित्याग करना चाहिए ।

६. आत्मा सयमितो येन, तं यम. किं करिष्यति ?

—आपस्तम्बस्मृति

जिसने आत्मा का संयम कर लिया उसका यम क्या करेगा ?

७. अत्तान दमयति पंडिता ।

—मज्झिमनिकाय २।१६।४

पण्डितजन आत्मा का दमन किया करते हैं ।

८. अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिंदइ बंधणं से । —उत्तराध्ययन २०।३९

आत्मा का निग्रह न करनेवाला और रस में गृद्ध व्यक्ति कर्म-बन्धनों के मूल को नहीं छेद सकता ।

९. अत्तान चे तथा कयिरा यथाञ्ञमनुसासति । —धम्मपद-१२।३

जैसा अनुशासन तुम दूसरों पर करना चाहते हो, वैसा ही अपने ऊपर भी करो ।

१०. अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिउ ?

—सूत्रकृताङ्ग १।१।१७

जो अपने पर अनुशासन नहीं रख सकता, वह दूसरों पर अनुशासन कैसे रख सकता है ?



१५ आत्म विजय

१. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेहए ॥

—उत्तराध्ययन ९।३५

अपनी आत्मा से ही युद्ध करो। बाह्य युद्ध मे क्या पडा है ? आत्मा से आत्मा को जीतकर सुख की वृद्धि करो।

२. एग जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।

—उत्तराध्ययन ९।३४

एक आत्मा पर ही विजय प्राप्त करो। यह सर्वश्रेष्ठ विजय है।

३. जे एगं नामे, से वहु नामे।

—आचाराग १।३।४

जो एक अपने को नमा लेता है, (जीत लेता) है, वह समग्र ससार को नमा लेता है।

४ सव्वमप्पे जिए जिय।

—उत्तराध्ययन ९।३६

एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

५ एगे जिए जिया पंच, पच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ता णं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥

—उत्तराध्ययन २३।३६

एक को जीत लेने से पाच को जीता, पाच को जीत लेने से दस को और दस को जीतकर मैंने सब शत्रुओ को जीत लिया।

६. एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।

—उत्तराध्ययन २३।३८

एक आत्मा दुर्जय शत्रु है, इसे जीतने से चार कषाय (क्रोध-मान-माया लोभ) पर विजय हो जाती है। इन पाचो (आत्मा एव कषाय) पर विजय होने से पाच इन्द्रियां भी जीत ली जाती हैं और आत्मा-कषाय-इन्द्रियां-इन दस शत्रुओ को जीत लेने पर, हे महामुने! मैं सुख-पूर्वक विचर रहा हूँ।

७. जितात्मासर्वार्थैः संयुज्यते।

—चाणक्यसूत्र १०

जिसने आत्मा को जीत लिया है, उसके सब अभीष्ट अर्थ सिद्ध हो जाते हैं।



१६ आत्मचिंतन

१. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मन ।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्य, किन्नु सत्पुरुषैरिति ॥

—शाङ्गंधर

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओ के समान कितना है और सत्पुरुषो के समान कितना है ?

२. के वा अह आसी, के वा इओ चुओ हविस्सामि ?

—आचाराग-२।१

मैं कौन था एव यहा से च्यवकर क्या होऊँगा ?

३. जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ।

—नियमसार१२३

जो अपनी आत्मा का ध्यान करता है, उसे परमसमाधि की प्राप्ति होती है ।

४. जो पुव्वरत्तावररत्तकाले, सपेहए अप्पगमप्पएणं ।
किं मे कड किं च मे किच्चसेस, किं सक्कणिज्ज न समायरामि ॥
किं मे परो पासइ किं च अप्पा, किं वाऽहं खलियं न विवज्जयामि ।
इच्चेव सम्म अणुपासमाणो, अणागय नो पडिवध कुज्जा ॥

—दशवैकालिकचूलिका २।१२-१३

साधु पहली और पिछली रात के समय अपनी आत्मा द्वारा आत्मा को देखे कि मैंने क्या-क्या करने योग्य कार्य किए हैं ? क्या-क्या कार्य करने शेष हैं तथा वे कौन-कौन से कार्य हैं, जो कर सकने पर भी नहीं कर रहा हूँ ? १२।

मुझे दूसरे कैसा पाते हैं और मेरी आत्मा कैसा पाती है ? और मैं अपनी किन-किन भूलों को छोड़ रहा हूँ—इस प्रकार अपनी आत्मा को अच्छी तरह देखनेवाले को भविष्य में दोष नहीं लगता ।१३।

५. निरामयो निराभासो, निर्विकल्पोऽहमानत ।
निर्विकारो निराकरो, निरवद्योऽहमव्यय ॥

—अपरोक्षानुभूति

मैं निरोग हूँ, निराभास हूँ, निर्विकल्प हूँ, नम्र हूँ, निर्विकार हूँ, निराकार हूँ, पापरहित हूँ और अव्यय-अक्षय-शाश्वत हूँ ।

६. एगो मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥

—नियमसार १०२

ज्ञान-दर्शनस्वरूप मेरी आत्मा ही शाश्वत तत्त्व है, इससे भिन्न जितने भी (राग-द्वेष-कर्म-शरीर आदि) भाव हैं, वे सब संयोगजन्य बाह्य-भाव हैं, अतः वे मेरे नहीं हैं ।

७. उवओग एव अहमिक्को ।

—समयसार-३७

मैं (आत्मा) एकमात्र उपयोगमय-ज्ञानमय हूँ ।

८ अहं अव्वए वि, अहं अवट्ठिए वि ।

—ज्ञाता धर्मकथा-१।५

मैं (आत्मा) अव्यय-अविनाशी हूँ, अवस्थित-एकरस हूँ ।

९. आदा हु सरणं ।

—मोक्षपाहुड-१०५

आत्मा ही मेरा शरण है ।

१०. चिदानन्दरूप· शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

—वेदान्तदर्शन

अनन्तज्ञान, अन तआनन्द एवं अनन्तकल्याणरूप शिव मैं ही हूँ ।

११. यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं, सोहमस्मीति चिन्तयेत् ।

—हरितस्मृति

जो सभी प्राणियो द्वारा जानने योग्य है, वह परब्रह्मरूप ईश्वर मैं ही हूँ ।

१२. यः परमात्मा स एवाहं, योहं स परमस्तत ।
अहमेव मयोपास्यो, नास्य कंचिदिति स्थिति ॥

जो परमात्मा है, वह मैं ही हू, जो मैं हूँ, वही परमात्मा है । वस्तुतः मैं ही मेरा उपास्य—उपासना करने योग्य हूँ, दूसरा कोई नही ।

१३. अहमेवचित्सरूप-श्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव ।
नान्यत् किमपि जडत्वात्, प्रीति सदृशेषु कल्याणी ॥

—निश्चयपञ्चाशत्

मैं ही चित्—ज्ञानस्वरूप हूँ, चिद्रूप आत्मा का जो आधार चेतनत्व है, वही मेरा है । अन्य वस्तुएँ जड होने से कोई भी मेरी नही है । समान रूपवालो की प्रीति ही कल्याणकारिणी होती है ।

१४. एकोऽहं निर्मम शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचर ।
वाह्या· संयोगजा भावा, मत्त सर्वेऽपि सर्वथा ॥

—इष्टोपदेश २७

मैं एक निर्ममत्व, शुद्ध, ज्ञानी एव योगीन्द्रो के दृष्टि का विषय हू, सयोग से उत्पन्न सारे पदार्थ मेरे से सर्वथा भिन्न—बाह्य हैं ।

१५. न मे मृत्यु. कुतो भीतिर्न मे व्याधि कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ॥

—इष्टोपदेश २९

मेरी मृत्यु ही नही, फिर भय कहाँ से ? मेरे रोग ही नहीं, फिर पीड़ा कहाँ से ? न मैं बालक हूँ, न वृद्ध हू और न जवान—ये सब अवस्थाएँ पुद्गल मे होती हैं, मैं तो आत्मा हू ।

१६. पुद्गलै: पुद्गलास्तृप्तिं, यान्त्यात्मा पुनरात्मना ।
परतृप्तिसमारोपो. ज्ञानिनस्तन्न युज्यते ॥

—अध्यात्मसार

पुद्गलो मे पुद्गल तृप्त होते है और आत्मा मे आत्मा तृप्त होती है, अत. ज्ञानियो को परवस्तु से तृप्त होने का विचार करना योग्य नहीं है ।

१७. तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु ?

—यजुर्वेद ३४।६

मेरे मन के संकल्प शुभ एवं कल्याणमय हो ।

१८. दु:खे-सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धे:, सम मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ !

—परमात्मद्वात्रिंशिका

हे नाथ ! जिसकी समस्त ममत्वबुद्धि नष्ट हो गई है ऐसा मेरा यह मन दु:ख-सुख मे, शत्रु-मित्रसमूह मे, संयोग-वियोग मे तथा भवन एव वन मे सदा समभाव मे लीन बना रहे ।

१९ हुम्तनाम् हुख्तनाम् ह्वर्श्तनाम् ।

—यस्न. हा ३५.२ पारसी धर्मग्रन्थ

हम पवित्र विचार करें, पवित्र वचन बोलें और पवित्र कर्म करें—अर्थात् हमारे विचार, वचन और कर्म पवित्र हों ।

९. आदा हु सरणं।

—मोक्षपाहुड-१०५

आत्मा ही मेरा शरण है।

१० चिदानन्दरूप शिवोऽहं शिवोऽहम्।

—वेदान्तदर्शन

अनन्तज्ञान, अन तआनन्द एवं अनन्तकल्याणरूप शिव मैं ही हूँ।

११. यच्च सर्वजनंज्ञ`य, सोहमस्मीति चिन्तयेत्।

—हरितस्मृति

जो सभी प्राणियो द्वारा जानने योग्य है, वह परब्रह्मरूप ईश्वर मैं ही हूँ।

१२. यः परमात्मा स एवाहं, योह स परमस्तत।
अहमेव मयोपास्यो, नास्य कंचिदिति स्थिति॰॥

जो परमात्मा है, वह मैं ही हू, जो मैं हूँ, वही परमात्मा है। वस्तुतः मैं ही मेरा उपास्य—उपासना करने योग्य हूँ, दूसरा कोई नही।

१३. अहमेवचित्सरूप-श्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव।
नान्यत् किमपि जडत्वात्, प्रीतिः सदृशेपु कल्याणी॥

—निश्चयपञ्चाशत्

मैं ही चित्—ज्ञानस्वरूप हूँ, चिद्रूप आत्मा का जो आधार चेतनत्व है, वही मेरा है। अन्य वस्तुएँ जड होने से कोई भी मेरी नही है। समान रूपवालो की प्रीति ही कल्याणकारिणी होती है।

१४. एकोऽह निर्मम॰ शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचर।
वाह्या॰ संयोगजा भावा, मता' सर्वेऽपि सर्वथा॥

—इष्टोपदेश २७

मैं एक निर्ममत्व, शुद्ध, ज्ञानी एवं योगीन्द्रो के दृष्टि का विषय हू, सयोग से उत्पन्न सारे पदार्थ मेरे से सर्वथा भिन्न—वाह्य है।

१५. न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधि कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ॥

—इष्टोपदेश २९

मेरी मृत्यु ही नही, फिर भय कहाँ से ? मेरे रोग ही नहीं, फिर पीडा कहाँ से ? न मैं बालक हूँ, न वृद्ध हू और न जवान—ये सब अवस्थाएँ पुद्गल मे होती हैं, मैं तो आत्मा हू ।

१६. पुद्गलै पुद्गलास्तृप्ति, यान्त्यात्मा पुनरात्मना ।
परतृप्तिसमारोपो, ज्ञानिनस्तन्न युज्यते ॥

—अध्यात्मसार

पुद्गलो से पुद्गल तृप्त होते हैं और आत्मा से आत्मा तृप्त होती है, अतः ज्ञानियो को परवस्तु से तृप्त होने का विचार करना योग्य नही है ।

१७. तन्मे मन शिवसकल्पमस्तु ?

—यजुर्वेद ३४।६

मेरे मन के संकल्प शुभ एव कल्याणमय हों ।

१८. दुःखे-सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धे, सम मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ !

—परमात्मद्वात्रिंशिका

हे नाथ ! जिसकी समस्त ममत्वबुद्धि नष्ट हो गई है ऐसा मेरा यह मन दुःख-सुख मे, शत्रु-मित्रसमूह मे, सयोग-वियोग मे तथा भवन एव वन मे सदा समभाव मे लीन बना रहे ।

१९. हुम्तनाम् हुख्तनाम् ह्वर्श्तनाम् ।

—यस्न हा. ३५।२ पारसी धर्मग्रन्थ

हम पवित्र विचार करें, पवित्र वचन बोलें और पवित्र कर्म करें—अर्थात् हमारे विचार, वचन और कर्म पवित्र हों ।

२०. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।

—यजुर्वेद २५।२१

हे यजनीय देवगण ! हम कानो से शुभ ही सुने और आंखो से शुभ ही देखें ।

२१. जीवेम शरदः शतं बुध्येम शरदः शतं,
रोहेम शरदः शतं, पूषेम शरदः शतं,
भवेम शरदः शतं, भूषेम शरदः शतं,
भूयसीः शरदः शतात् ॥

—अथर्ववेद १६।६७।२-८

हम सौ और सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवन यात्रा करते रहे, ज्ञान की वृद्धि करते रहे। उत्कृष्ट उन्नति प्राप्त करते रहे पुष्टि और दृढता प्राप्त करते रहे। आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहे और समृद्धि, ऐश्वर्य तथा सद्गुणो मे अपने आपको भूषित करते रहे।

२२. उदायुषा स्वायुषोदस्थाम् ।

—यजुर्वेद ४।२८

हम उत्कृष्ट और शुभजीवन के लिए उद्योगशील हो ।

२३. यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मसुमना असत् ।

—यजुर्वेद १६।४

हमारी जीवनचर्या ऐसी हो—जिसमे यह सारा जगत् हमे व्याधियो से बचाकर प्रसन्नता देनेवाला बने ।

२४. मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।

—ऋग्वेद ८।४८।१४

हम पर न तो निद्रा हावी हो, और न व्यर्थ की बकवास करनेवाला निन्दक ।



आत्मा की महिमा

१. योऽयमात्मा इदममृतम्, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम्।

—बृहदारण्यक उपनिषद्-२।५।६

आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही यह सब कुछ है।

२. स्वस्मिन् सदभिलाषित्वा-दभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वा-दात्मैव गुरुरात्मनः॥ —इष्टोपदेश ३४

अपने में सद्भावना करानेवाला होने से, इच्छित वस्तु का ज्ञान करानेवाला होने से और स्वयं को हित में लगानेवाला होने से आत्मा ही आत्मा का गुरु है।

३. अयमात्मा स्वयं साक्षात्, गुणरत्नमहार्णवः।
सर्वज्ञः सर्वदृक् सार्वः परमेष्ठी निरञ्जनः॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ २२०

यह आत्मा स्वयं साक्षात् गुणरूपी रत्नों से भरा हुआ समुद्र है। यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वत्र गतिवाला, परमपद में लीन और सर्वप्रकार की कालिमा से रहित (निरञ्जन) है।

४ स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं, तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।

—ऋग्वेद ६।४७।१

यह अध्यात्मरस स्वादिष्ट है, मीठा है, तेज है और रसीला है।

५. सैक्रीन-चीनी से १०० गुनी मीठी होती है। एक वैज्ञानिक इसका प्रयोग कर रहा था। बीच में भोजन करने बैठा तो सब चीजें मीठी लगीं। (उस समय १०० गुनी मीठी ही थी) सैक्रीन आदि पदार्थों में भी ऐसा मिठास मिल सकता है, तो फिर आत्मा की मधुरता का कहना ही क्या?



आत्मा के भेद

१. एगे आया।

—स्थानांग १।१

आत्माएँ यद्यपि अनन्त हैं, फिर भी चैतन्यगुण की समानता से आत्मा एक है—ऐसे कहा गया है।

२. अट्ठविहा आया पण्णत्ता, तजहा—
दवियाया, कसायाया, जोगाया, उवओगाया, णाणाया, दसणाया, चरित्ताया वीरियाया।

—भगवती १२।१

आत्माएँ आठ कही हैं—
(१) द्रव्यआत्मा (२) कषायआत्मा (३) योगआत्मा (४) उपयोग-आत्मा (५) ज्ञानआत्मा (६) दर्शनआत्मा (७) चारित्रआत्मा (८) वीर्य-आत्मा।

३ अन्तर-वाहिरजप्पे, जो वट्टइ सो हवइ वाहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ, सो उच्चइ अतरंगप्पा॥

—नियमसार १५०

जो अन्तर एव वाहिर के जल्प (वचनविकल्प) मे रहता है, वह वहिरात्मा है और जो किसी भी जल्प मे नही रहता, वह अन्तरात्मा कहलाता है।

४. बहिर्भावानतिक्रम्य, यस्यात्मन्यात्मनिश्चय ।
सोन्तरात्मा मतस्तज्ज्ञै-विभ्रमध्वान्त भास्करैः ॥१॥
आत्मबुद्धि शरीरादौ, यस्य स्यादात्मविभ्रम ।
बहिरात्मा स विज्ञेयो, मोहनिद्रास्तचेतनः ॥२॥
चिद्रूपानन्दमयो, विशेषोपाधिवर्जित शुद्धः ।
अत्यक्षोऽनन्तगुण , परमात्मा कीर्तितस्तज्ज्ञैः ॥३॥

बाह्यभावो से ऊपर उठकर जिसके अन्तर मे आत्मा का निश्चय हो गया है, अज्ञान-अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य के तुल्य ज्ञानी पुरुष उसे अन्तरात्मा कहते है । १ ।

जो शरीर मे आत्मा की बुद्धि रखता है, मोहनिद्रा के कारण जिसकी चेतना विलुप्त हो गई है एव जो आत्मा मे सन्देहशील है, वह व्यक्ति बहिरात्मा माना जाता है । २ ।

जो ज्ञानरूप आनन्द से युक्त है, विशेषउपाधि से रहित है, शुद्ध है, इन्द्रियो को जीतनेवाला है तथा अनन्त गुणसम्पन्न है—उसे ज्ञानियो ने परमात्मा कहा है । ३ ।



२० इन्द्रियो की शक्ति

१. इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्त्यपि यतेर्मन. ।

—श्रीमद्भागवत ७।१२।७

अत्यन्त तंग करनेवाली इन्द्रियाँ यति–सन्यासी के मन को भी हर लेती हैं अर्थात् विषयो की ओर ले जाती हैं ।

२. जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हितर्षा–
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदर श्रवण कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कामशक्ति–
र्बह्व्य सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ।

जैसे—विभिन्न सौतें (सपत्नियाँ) गृहस्वामी को भिन्न-भिन्न दिशाओं मे खीच ले जाती है, वैसे—जीभ अपने स्वामी शरीर को एक ओर खींचती है तो प्यास अपनी ओर ले जाती है । जननेन्द्रिय उसको एक ओर प्रेरित करती है, उसी प्रकार—स्पर्श, पेट और कान उसे दूसरी ओर प्रेरित करते हैं । घ्राणेन्द्रिय उसको भिन्न दिशाओ मे खीचती है तो चपल आँखें और कामशक्ति उसको अन्यत्र ही ले जाती हैं ।

३. शब्दादिभि· पञ्चभिरेव पञ्च,
पञ्चत्वमापु· स्वगुणेन बद्धा ।
कुरङ्ग—मातङ्ग—पतङ्ग—मीन—
भृङ्गा नर पञ्चभिरञ्चित· किम् ॥

—विवेकचूडामणि ७८

शब्दादि एक-एक इन्द्रियों के विषयों से बंधे हुए मृग, हाथी, पतंग, मछली और भ्रमर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। तो फिर इन पाँचों से जकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है ?

४. एक सदन में पाँच का, पृथक-पृथक आदेश।
समन्वय चन्दन ! क्यों नहीं, होना क्लेश विशेष ॥

—दोहा-द्विशती

५. इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि नश्यति।

—कौटलीय-अर्थशास्त्र

इन्द्रियों के विषयों में आसक्त व्यक्ति चतुरंगवान् होता हुआ भी नष्ट हो जाता है।



२१ इन्द्रिय-दमन

१. दुद्दंता इंदि पच, संसाराए सरीरिण।
ते चेव णियमिया सता, णेज्जाणाए भवन्ति हि ॥

—ऋषिभाषित १६।१

दुर्दान्त, इन्द्रियाँ प्राणियो को संसार मे भटकानेवाली हैं एव वे ही सयमित होने पर मोक्ष की हेतु बन जाती हैं।

२. सारथीव नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डिता।

—दीघनिकाय २।७।१

जिस प्रकार सारथि लगाम पकडकर रथ के घोडो को अपने वश मे किये रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी-साधक ज्ञान के द्वारा अपनी इन्द्रियो को वश में रखते हैं।

३. कद अल्फ हमन् जक्का हा।

—कुरान ६१।६

निश्चय ही उस आदमी का जन्म सफल हुआ, जिसने अपनी इन्द्रियो को पवित्र किया।

४. इन्द्रियो को वश करना सुज्ञपुरुषो का काम है और उनके वश हो जाना मूर्खो का काम है।

—एपिक्टेट्स

५. वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

—गीता २।६०

जिस पुरुष के इन्द्रियाँ वश मे होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

६ जहाँ बुद्धि और भावना का मेल नहीं खाता, वहाँ इन्द्रियनिग्रह का अभाव है।

—विनोबा

७ विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा—
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥

—भर्तृहरि-शृंगारशतक ६५

केवल वायु, जल और पत्तों को खाकर जीनेवाले विश्वामित्र-पराशर आदि बड़े-बड़े ऋषि भी स्त्रियों के मनोहर मुख-कमल को देखकर मोहित हो गए, तो फिर घी-दूध—दधिमिश्रित चावलों का भोजन करनेवाले मनुष्य अपनी इन्द्रियों का दमन कर ही कैसे सकते हैं? उनसे यदि इन्द्रिय निग्रह हो जाय, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्र में तैरने लग जाय।



२२ जितेन्द्रिय

१. जीयन्ता दुर्जया देहे, रिपवश्चक्षुरादय ।
जितेषु ननु लोकोऽय, तेषु कृत्स्नस्त्वया जित ॥

—किरातार्जुनीय ११।३२

अपने शरीर मे रहे हुए चक्षु आदि इन्द्रियाँ दुर्जय शत्रु हैं। इन्हे सर्व-प्रथम जीतना चाहिए। इन्हें जीत लेने पर समझो कि तुमने सारा ससार जीत लिया।

२. सुच्चिय सूरो सो चेव पडिओ, तं पसंसिमो निच्चं ।
इन्दियचोरेंहि सया, न लुट्टियो जस्स चरणधन ॥

—प्रकरणरत्नाकर

वही शूर है, वही पण्डित है, हम सदा उसी की प्रशंसा करते हैं, जिसका चरण-धन इन्द्रियरूप चोरो द्वारा नही लूटा गया।

३. श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च, भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नर ।
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रिय ॥

—मनुस्मृति २ ६८

निन्दा-स्तुति सुनकर, सुखद-दुखद वस्त्रादि को छूकर, सुरूप-कुरूप को देखकर, सरस-नीरस वस्तु को खाकर एव सुगन्ध-दुर्गन्ध वस्तु को सूघकर जिसे हर्ष-विषाद नही होता, उसे जितेन्द्रिय समझना चाहिए।



२३ कान और बधिरता

१. कान गुणीजनों के गुण एवं गुरुओं का ज्ञान सुनने के लिए हैं, स्वप्रशंसा और परनिन्दा सुनने के लिए नहीं।

—धनमुनि

२. बोला भी बोला, सुणता भी बोला, जो न सुण्यो गुरुज्ञान!

—मारवाड़ी भजनमाला

३. काना में ठेठी घाल राखी है।

—राजस्थानी कहावत

४. दो भले कान सौ ज़बानों को सुखाकर शुष्क कर देते हैं।

—फ्रैंकलिन

५. भारत में १ करोड़ २५ लाख ८० हजार व्यक्ति बहरे हैं।
(डा. वाई. पी. कपूर) —नवभारत टाइम्स, ७ फरवरी १९६८

६. बोलो पूछै बोली नै काई गाया होली नै।

—राजस्थानी कहावत

७. पंडितजी! पाप लागु-लो कहि कातानिया है।
पण्डितजी गंगे में हो, गा रहे भजीता चलने लाग्।

(संकेत हाथ से दे)

८. बहरे के प्रश्नोत्तर—

बहरा आदमी [illegible] प्रश्नों का उत्तर [illegible]
[illegible] है।

एक बहरा अपने बीमार मित्र से मिलने गया किन्तु वह मर चुका था। बहरे ने उपस्थित लोगो से पूछा कि भाईजी किस तरह हैं ? लोगो ने कहा—वे तो मर चुके। बहरे ने सोचा, कुछ ठीक बतला रहे हैं, अतः तपाक से कह दिया, बहुत खुशी की बात है, भगवान ने अच्छा किया। लोग हँसने लगे, लेकिन बहरा नही समझा और पूछने लगा—किसका इलाज चल रहा है ? उपस्थित मजाकिये ने कहा—यमराजजी का। बहरा अमुक डाक्टर का नाम समझकर बोल पड़ा—ये डाक्टर बहुत अच्छे हैं, इनके हाथ मे यश भी है। तबीयत नरम-गरम हो तो आप भी इन्ही की दवा लिया करें। (हँसी बढ़ती जा रही थी)

सहजभाव से बहरे ने पुनः प्रश्न किया—भाईजी को पथ्य क्या दिया जाता है ? उत्तर मिला—कंकर-पत्थर। इसने दलिया-खिचडी आदि समझकर कहा—पथ्य बिल्कुल ठीक है। आप लोग भी मौके-मौके इसी का प्रयोग किया करें। अस्तु ! भाईजी सोते कहाँ हैं ? उत्तर दिया गया—श्मशान मे। बहरे ने कमरा आदि समझकर कह डाला—स्थान सुरक्षित है। बाल-बच्चो को भी यही सुला दिया करें। उपस्थित लोगो के हँसी के मारे पेट दुखने लगे। आखिर ज्यो-त्यो समझाकर बहरे को घर भेजा।



आंख

१ आँखें सारे शरीर का दीपक है।

—गांधी

२ आँख कैमरा है, इससे अच्छी फोटो खींचो।

३. आँख-कान में चार आंगल रो फरक।

● आँख्या देखी परसराम, कदे न झूठी होय।

—राजस्थानी कहावतें

४. जिह्वा की अपेक्षा नेत्रों को तीव्र रखो।

—सर्वेन्टिस

५. मन का भाव बदलते ही आँख बदलती है, आँख देखते!

६. यथा नेत्रं तथा शीलं, यथा नासा तथार्जवम्।
आँखों के रंग-ढंग के अनुसार ही मनुष्य का स्वभाव होता है एवं नाक की सरलता-वक्रता के अनुसार मनुष्य का हृदय सरल-वक्र होता है।

७. तेजस्वी और अपराधी आँख नहीं मिलाते। पहला अपने प्रभाव को बचाना चाहता है और दूसरा अपनी कमजोरी को छिपाता।

८. गावः पश्यन्ति गन्धेन, वेदैः पश्यन्ति वै द्विजाः।
चारैः पश्यन्ति राजानः चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥

—पञ्चतन्त्र ३।६५

गायें गन्ध से, ब्राह्मण वेदों से, राजा गुप्तचरों से और अन्य लोग आँखों से देखा करते हैं।

१० जिसकी आँख नही उसकी साख नही।

● आँख का काम भौह से नही होता।

—हिन्दी कहावतें

११. न पुसा वामलोचनम्।

—संस्कृत पद्य

पुरुषो का वामनेत्र फरकना अच्छा नही। जबकि स्त्रियो का अच्छा है।

१२. एक आँख मे किसी खोले र किसी मीचे

—राजस्थानी कहावत

१३. लक्ष्मण का चक्षु संयम—

नाहं जानामि केयूरे, नैव जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्य पादाभिवन्दनात्॥

—वाल्मीकिरामायण ६।२२

मैं सीता के केयूर (भुजबंद) को नही जानता, कुडल को नही जानता, केवल नूपुर को पहचानता हू, क्योकि प्रतिदिन उनके चरणो को ही वन्दना किया करता हूँ। (इस कथन से पता चलता है कि लक्ष्मण का चक्षु-सयम अद्भुत था)।



१ को वा महान्धो ? मदनातुरो यः ।

—शंकरप्रश्नोत्तरी ६

प्रश्न—बड़ा अन्धा कौन ?

उत्तर—कामातुर व्यक्ति ।

२ रात्र्यन्धा दिवान्धा, जन्मान्धा मान-माय-क्रोधान्धा ।
कामान्धा लोभान्धा, इमे क्रमेण विशेषान्धा ॥

१. रात्र्यन्ध २. दिवसान्ध, ३. जन्मान्ध, ४. मानान्ध, ५ मायान्ध, ६ क्रोधान्ध, ७. कामान्ध, ८ लोभान्ध—ये क्रमशः विशेष अन्धे माने गए हैं ।

३. न पश्यति जन्मान्धः, कामान्धो नैव पश्यति ।
न पश्यन्ति मदोन्मत्ता, अर्थी दोषान् न पश्यति ॥

—चाणक्यनीति ६।८

जन्म का अन्धा नहीं देखता, कामान्ध नहीं देखता, मदोन्मत्त नहीं देखते तथा याचक दोषों को नहीं देखता ।

४ आंधा भी आंधा गुमानां भी आंधा, जो प्रभु-दर्शन नाय ।

—मारवाड़ी भजनमाला

५. आंधो बांटै सीरणी, घर-घर का नै दय ।

● आंधी पीसै कुत्ता खाय, पापी को धन परलै जाय ।

● आंधो न्हावै जा निमावै ।

८. जवान को इतना तेज मत चलने दो कि वह मन से आगे निकल जाय।

९. नीकली होठे, चढी कोठे।

—गुजराती कहावत

१०. यह जवां नही, लोहे की शमसीर है,
जो कह दिया, पत्थर की लकीर है।

● छुरी कातुरी का, तलवार का घाव लगा सो भरा।
लगा है जख्म जबा का, वो रहता है हमेशा हरा॥

—उर्दू शेर

११. तीन इंच लम्बी जबान छः फिट ऊँचे आदमी को मार सकती है।

—जापानी कहावत

१२. लम्बी जबान छोटी जिन्दगी।

—अरबी कहावत

१३. जीभ नें वरजजे, नीकर दांत पडावशे।

● जीभ करे छे आल-पपाल, ने खांसडा खाय सिर-कपाल।

● जीभ सो मण घी खाय पण चीकणी न थाय।
चमक हजारो वर्ष पाणी मां रहे पण आग जाय ज नही।

—गुजराती कहावतें

१४. रसना में तीन इन्द्रियाँ—अन्य इन्द्रियो के गोलको मे एक-एक इन्द्रिय ही होती है, पर जिह्वा मे तीन इन्द्रियाँ (इन्द्रियो की शक्तियाँ) हैं। इसलिए अन्य सब इन्द्रियो की अपेक्षा-जिह्वेन्द्रिय अतिप्रबल है। यह रसनेन्द्रिय है, स्पर्शनेन्द्रिय है और वागीन्द्रिय भी है। जिह्वेन्द्रिय से रसास्वादन कर सकते हैं, शीत-उष्ण-मृदु-कठिन स्पर्श को जान सकते हैं और बोल भी सकते हैं। अतः एक रसनेन्द्रिय को जीतने से अन्य सब विषय और इन्द्रियाँ जीती जाती हैं। श्रीमद्भागवत ११।८।२१ में कहा भी है—

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्, विजितान्येन्द्रियः पुमान्।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे॥

अन्य इन्द्रियों को जीत लेने पर भी मनुष्य जब तक जिह्वा को नहीं जीत लेता, तब तक जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। जिसने रस-स्वाद को जीत लिया, उसने सबको जीत लिया।

१५ संन्यासी को एक भक्त सदा चाय पिलाया करता था। एक दिन चीनी के बदले भूल से नमक डाल दिया। संन्यासी ने चुपचाप चाय पी ली। पता लगने पर भक्त दौड़ता हुआ आया और पूछने लगा—बाबाजी! आपने खारी चाय कैसे पी ली? बाबाजी ने कहा—भाई! सौदा लेने वाला पेट तो खारा-मीठा करता नहीं, ये तो बीच म दलाल (जीभ) के तूफान हैं।

१६ गूंगा भी गंगा, बोलता भी गूंगा, जो न करगो प्रभुगान।

—मारवाड़ी भजनमाला



७. **मन की ताकत**—विश्व मे दो बडी ताकतें हैं। एक मन की और दूसरी तलवार की। दोनो मे मन की ताकत बडी है। इसके द्वारा जो कुछ चाहो, कर सकते हो। देखो! मुसोलिनी एक गरीब लोहार का लडका था, जिसने इटली की बागडोर हाथ मे ली। हिटलर एक वीर सिपाही था, जो जर्मनी का भाग्यविधाता हो गया। अमेरिका के धनकुबेर राकफेलर सडको पर मामूली चीजे बेचते थे, जो ससार मे सबसे बडे धनी बने। मैं सही कहता हूं कि तुम राजनैतिकसंसार मे नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी, महात्मा गांधी एवं पंडित जवाहरलाल नेहरू बन सकते हो। आर्थिक-विश्व मे हैनरीफोर्ड, राकफेलर और निजाम हैदराबाद बन सकते हो। साहित्यिक-दुनिया मे शेक्सपियर, बर्नार्डशॉ, कालिदास एवं टैगोर बन सकते हो। साधकजीवन मे महावीर, गौतम, जम्बूकुमार और स्थूलिभद्र बन सकते हो। एक क्षण मे उन्नति-अवनति, पतन-उत्थान एव सुख-दु ख मन के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

—सकलित



मन का स्वभाव

१ विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।

—किरातार्जुनीय

चित्त की वृत्तियाँ विचित्र रूपवाली होती हैं ।

२. क्षणमानन्दितामेति, क्षणमेति विषादिताम् ।
क्षणं सौम्यत्वमायाति, सर्वस्मिन् नटवन्मनः ।

—योगवासिष्ठ १।२८।३८

मन की स्थिति नट के समान है—वह क्षणभर में आनन्दी, क्षणभर में विषादी एवं क्षणभर में सौम्य—ऐसे रूप बदलता ही रहता है ।

३. चित्त नदी उभयतो वाहिनी, वहति पुण्याय वहति पापाय च ।

—योगदर्शनभाष्य

चित्त नदी दोनों तरफ बहनेवाली है—पुण्य की तरफ और पाप की तरफ ।

४. मनो मधुकरो मेघो, मानिनी मदनो मरुत् ।
मर्कटो मा मदो मत्स्यो, मकारा दश चञ्चलाः ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६३

मकार आदिवाले—ये दस चीजें चंचल स्वभाववाली हैं—(१) मन (२) मधुकर-भौंरा (३) मेघ (४) मानिनी-स्त्री (५) मदन-कामदेव (६) मरुत्-हवा (७) मर्कट-बन्दर (८) मा-लक्ष्मी (९) मद-अभिमान (१०) मत्स्य-मछली ।

५. [illegible] मन ।

—किरातार्जुनीय

[illegible] ।

२६ मन के आश्रित बन्ध-मोक्षादि

१. वन्धाय विषयासक्त, मुक्त्यै निर्विपय मन· ।
मन एव मनुष्याणा, कारणं वन्ध-मोक्षयो ॥

—चाणक्यनीति १३।१२ तथा बृहन्नारदीय पुराण १।४७।४

यह मन ही मनुष्य को वाधने–छोडनेवाला है। विषयासक्त होने पर बांधता है एव निर्विषयदशा मे मुक्त वनाता है।

२. न देहो न च जीवात्मा, नेन्द्रियाणि परतप ।
मन एव मनुष्याणा, कारण बन्ध-मोक्षयो· ।

—देवीभागवत १।१५

मनुष्यो को वाधने–छोडने वाला न शरीर है, न जीवात्मा है और न इन्द्रिया हैं, मुख्यतया मन ही बन्ध–मोक्ष का कारण है।

३. नायं जनो मे सुख-दु ख हेतु, न देवतात्मा-ग्रह-कर्म-काला· ।
मनः पर कारणमामनन्ति, ससारचक्र परिवर्तयेद् यत् ।

—श्रीमद्भागवत ११।२३।४३

मेरे सुख-दु ख के कारण न तो ये मनुष्य हैं और न देवता, न शरीर है और न ग्रह-कर्म-काल आदि। मन ही सुख-दु ख का मुख्य कारण माना गया है, क्योकि यही सारे ससार-चक्र को चला रहा है।

४. निर्मलमन जन सो मोहि पावा,
मोहि कपट छल-छिद्र न भावा ।

—रामचरितमानस

५. मनस्तु सुख-दुःखानां, महतां कारणं द्विज !
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्, सर्वं भवति निर्मलम् ।
भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु, स्नात्वा-स्नात्वा पुनः-पुनः,
मनो न निर्मलं यावत्, तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥

—देवीभागवत १।१५

हे ब्राह्मण ! मन महान् सुख-दुःखों का कारण है। इसके निर्मल होने पर सब कुछ निर्मल हो जाता है। पुनः-पुनः नहा-नहा कर सभी तीर्थों में भ्रमण करने पर भी जब तक मन निर्मल नहीं है, तब तक समस्त क्रियाएँ निरर्थक हैं।

६. स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवन्ति, नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ।

स्वस्थ और निर्विकार चित्त में बुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। चित्त के विकारग्रस्त होने पर धातुएँ नष्ट होने लग जाती हैं।

७. तुष्टे हृदि सुधासिक्तं, रुष्टे विषमयंजगत् ।

—नलविलास

हृदय शान्त हो तो संसार अमृत से सींचा हुआ प्रतीत होता है और यदि वह अशान्त हो तो संसार जहर से भरा हुआ लगता है।



३०   मन की मुख्यता

१. मनोयोगो वलीयाँश्च, भाषितो भगवन्मते ।

जैनदर्शन मे मनोयोग वलवान माना गया है ।

२ वाग् वै मनसो ह्रसीयसी । अपरिमिततरमिव मन परिमिततरेव हि वाक् ।

—शतपथब्राह्मण १।४।७।७

मन से वाणी कही छोटी है, दोनो मे मन कही अपरिमित और वाणी अधिक परिमित है ।

३. मनसा वाग् धृता । मनो वा इद पुरस्ताद् वाच. ।

—शतपथब्राह्मण ३।२।४।?१

वाणी को मन पकडे रहता है । वाणी से मन पहले आता है ।

४. वस्तु रम्यमरम्यं वा मन संकल्पत ।

—नलविलास

वस्तु अच्छी-बुरी वास्तव मे मन की मान्यता के अनुसार ही होती है ।

५. सर्व. स्वमकल्पवशाल्लघुर्भवति वा गुरु ।

—योगवाशिष्ठ ३।७०।३०

सब कोई अपने मन के संकल्प से ही छोटे-वडे वनते हैं ।

६. सिद्धि वा यदि वासिद्धि, चित्तोत्साहो निवेदयेत् ।

कर्म की सिद्धि होगी या असिद्धि—यह मन का उत्साह वता देता है ।

७. मनः कृतं कृतं लोके, न शरीर-कृतं कृतम् ।

—लघुयोगवशिष्ठसार

मन से किया हुआ काम ही वास्तव में किया हुआ है, शरीर से किया हुआ नहीं।

८. मनसैव कृतं पाप, न वाण्या न च कर्मणा ।
येनैवालिङ्गिता कान्ता, तेनैवालिङ्गिता सुता ॥

मन के भाव से ही पाप माना जाता है, वचन और कर्म से नहीं। पत्नी और पुत्री के आलिंगन में भाव की ही भिन्नता है।

९. मन के जीते जीत है, मन के हारे हार।

—हिन्दी पद्य

१०. मन अपनी निज गति में अपने ही में स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना सकता है।

—मिल्टन

११. प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने मन ही मन सातवीं नरक एवं सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग में जाने की तैयारी करली। तन्दुलमत्स्य मात्र अन्तर्मुहूर्त की आयु में इस मन से ही सातवीं नरक में जाता है क्योंकि मन के अभाव में विशालकाय असंज्ञी मत्स्य प्रथम नरक से आगे नहीं जाते।

—परमुनि

१२ शरीर की क्रियाएँ भी मुख्यतया मन के पीछे—देखिए मन के बदलने से आँखें-नाक-मुँह आदि सारे बदल जाते हैं। मन कुंठित होने पर धमनी अस्तव्यस्त, और हृदय और श्वास-प्रश्वास की क्रियाएँ तेजी से चलती हैं, नींद उड़ जाती है। मन के चौंकने से कान खड़े हो जाते हैं। जब मन कुछ सोचता है तब मस्तक की नसें तन जाती हैं—ऐसा माना जाता है। दुःख प्रेम से मन दुःखपूर्ण होने पर आँखों से आँसू बहने लगता है। मन के भाव बदल जाते ही अनेक विकार उत्पन्न

हो जाते हैं। कई माताएँ एव पत्नियाँ पुत्र-पति की मृत्यु के समय मनोदु ख से स्तब्ध हो जाती हैं, तब उन्हें रुलाने की कोशिश की जाती है, अन्यथा उनके पागल हो जाने की या मर जाने की आशका रहती है।

—आत्मविकास, पृष्ठ २८८

१३. **मन का पानी पर अद्‌भुत असर**—तीन व्यक्तियो ने पौधो पर जल सीचा। एक के सींचे पौधे कुम्हला गये, दूसरे के सीचे हुए लहलहा गये और तीसरे के सीचे हुए मूल रूप मे रहे। वैज्ञानिको द्वारा तीनो के मन का अध्ययन किया गया, तब पता चला कि पानी सीचते समय पहले के मन मे क्रूरता–निर्दयता थी, दूसरे के मन मे करुणा एव मैत्री भावना थी तथा तीसरे के मन मे न क्रूरता थी और न करुणा।

—जैनभारती ७ मई १९७२ के आधार से



३१ मन के बिना कुछ नहीं

१. मन विना मेळो नहीं, वाड विना वेलो नहि, ने गुरु विना चेलो नहीं।

- मन विना नुं मळवुं नकामुं ने हेत विना नुं हळवुं नकामुं
- मन विना नुं मळवुं ते भींते भटकावुं।

—गुजराती कहावतें

२ मन मिलियां रा मेला, नहिं तो चलो अकेला।

- मन होय तो मालवे जाय परो।
- मन विना रा पावणा, घी घालूं के तेल ?
- बगारी मांगण्यां देवे पण रो-रो देवे।
- मोयलो जावे जिको मरणे री मुकलावणी ल्यावे।
- उठाया कुत्ता [illegible] सिकार करे !
- थूक सूं साटोड़ा कितराक दिन चालै !

—राजस्थानी कहावतें

१. [illegible]।

—ऋग्वेद [illegible]

[illegible]

४. सच्चे दिल बिन हो नहीं—सकता अच्छा काम।
एक काम मालिक करे, एक नौकर करे हराम॥

—दोहा-सदोह

५. खुशी नो सोदो ते हाथी नो होदो।

- पराणे प्रीति थाय नहिं, बाध्या कराबीए गाम वसे नहिं,
ने जबरदस्ती नो सोदो नभे नहि।
- मारी ने मुसलमान करवो तेमां लाभ नहिं।
- सासू सिखामण दे अने वहू कीडियो गणे।
- वात करवा माडे, त्यारे तारा गणे।

—गुजराती कहावतें

६. मन चगा तो कठौती मे गगा।

—संत रैदास

७. मन पक्का तो पखाने मे मक्का।

—हिन्दी कहावत

८. फेन्सी पासेथ व्यूटी ?

—अंग्रेजी कहावत

मन मिले उसकी जाति क्या पूछना ?

९. मनरा लाड खावणा तो ओछा क्यू खावणा ?

—राजस्थानी कहावत

१०. सुनना सबकी और करना अपने मनकी।

—हिन्दी कहावत



१. चित्तमेतदमलीकरणीयम् ।
इस चित्त को निर्मल बनाना चाहिए ।

२. दिल साफ कसूर माफ ।

—हिन्दी कहावत

३. मनः शुद्ध्यैव शुद्धि स्याद्, देहिनां नात्र संशयः ।
वृथा तद्व्यतिरेकेण, कायस्यैव कदर्थनम् ॥

—ज्ञानार्णव पृष्ठ २३४

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है । उसके बिना केवल शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है ।

४. तीर्थानामपि तत्तीर्थं, विशुद्धिर्मनसः परा ।

—स्कन्दपुराण-काशीखण्ड-अ ६

मन की परमविशुद्धि सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ है ।

५. दिल बदस्त आवुर्द कि हज्जे अकबर अस्त ।
अज हजारां काबा, यक दिल बेहतर अस्त ॥

—उर्दू शेर

निर्मल [illegible] जिस तरह मैं मूर्ति की तरह शुद्ध मनवाले को परमेश्वर दीखता है और [illegible] प्रतिबिम्बित रहते हैं ।

६. चित्तशुद्धि के चार [illegible]—

(१) देहशोधन—शरीर के [illegible] का निग्रह ।

-१६

(२) वेदनावलोकन—साता-असाता का विचार।

(५) चित्तावलोकन—चित्त सकाम-समोह-असमाधियुक्त है या इससे विपरीत—इस विषय का विचार।

(४) मनोवृत्त्यवलोकन—खाली तालाब आदि में जीव-जन्तुवत् मन मे दुर्भाव आ जाते हैं, उनका ध्यान रखना।

—महात्मा बुद्ध

७. मन का निरीक्षण आवश्यक—

(क) आइने मे चेहरा देखकर एक नजर मन पर भी डाल।

(ख) तू आइने के बदले दिल मे मुंह देख ताकि अन्दर का हाल दीखे।

(ग) एक टोपी के पीछे दो चेहरे मत लिये फिरो।

(घ) अच्छे चेहरे के पीछे भद्दा दिल भी हो सकता है।

—हिन्दी कहावतें



३३ मनःशुद्धि दुष्कर

१. झर गई पूछ रोमान्त झरे, पशुता का झरना बाकी है।
बाहर-बाहर तुम संवर चुके, मन अभी संवरना बाकी है॥

—दिनकर

२. मस्जिद तो बनाली पल भर में, ईमां की हरारतवालों ने।
यह मन तो पुराना पापी है, वर्षों में नमाजी बन न सका॥

—इकबाल

३. घृष्टे नेत्रे कर्णौ घृष्टौ, घृष्टा जिह्वा रदैः समम्।
घृष्टानि विषयायूंषि, घृष्टं नान्तर्गतं मनः॥

नेत्र घिस गए, कान घिस गए, दांतों सहित जीभ घिस गई, और विषयों में आयु भी घिस गई लेकिन अन्तर्मन अभी तक नहीं घिसा।

४. मलिन रुई से सूत्र, बन जाता है सून।
धोने निखरे अगर हो, रुई में भी सून॥
बगुल-क्रिया के पार भी, सदा रहता निराश।
जो मन में भी पाप हो, कौन करे विश्वास॥

—दोहा संदोह

५. दूध में जितना अधिक पानी होगा, खोआ या मावा बनाते समय उतना ही अधिक उबालना पड़ेगा। इसी प्रकार मन में जितना अधिक पाप होगा, उतने ही अधिक धर्म-ध्यान की आवश्यकता होगी।

३४ मनःशुद्धि के अभाव में

१. वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च, नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य, सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

—मनुस्मृति २।९७

जिसका मन अपवित्र है, उस मनुष्य के वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम और तप कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

२. किं जिनेन्द्रेण रागाद्यै-र्यदि स्व कलुषं मनः ?

—योगसार

यदि हमारा मन रागादिदोषों से कलुषित है तो जिनेन्द्रभगवान भी क्या कर सकते हैं ?

३. मन मैले सब किछु मैला, तनि धोतै मन इच्छा न होई।

—गुरुग्रन्थसाहिब, महल्ला ३

४. जैसे-चिकनी पट्टी पर लिखा नहीं जाता, उसी प्रकार मन को शुद्ध बनाए बिना उस पर उपदेश का असर नहीं होता।

५. अगर मन है मैला न तन को सवार,
पिया है जो अन्धा तो कैसा शृंगार ?

६. पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं।

—उत्तराध्ययन ३२।५९

दुष्ट चित्त कर्मों का उपार्जन करता है।



३५ मन को शिक्षा

१. पतितः पशुरपि कूपे, निःसर्तुं चरणचालनं कुरुते ।
धिक् त्वां चित्त ! भवाब्धेरिच्छामपि नो बिभर्षि निःसर्तुम् ।

कुएँ में गिरा हुआ पशु भी उसमें से निकलने के लिए पग-पछाड़ करता है, किन्तु रे चित्त ! तुझे धिक्कार है कि तू भवसागर से निकलने की इच्छा भी नहीं करता ।

२ चित्तागुप्त पहली चेतता, चित्त ! तूं पहली चेत ।
मृग मनसा रे कारणे, राचे मरुनी रेत ॥

३. मनः कुत्रोद्योगः गमयसि वद मे गम्यपदवी,
नरे वा नार्यां वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम् ।
यतस्ते पञ्चापि त्वरितमपि हास्यास्पदवी,
जनन्योः सा नास्ति त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम् ॥

अरे मन ! तू कहाँ जाने का प्रयत्न कर रहा है ? पुरुषों में या स्त्रियों में—दोनों ही जगह जाकर तू लज्जित होगा, क्योंकि तू हास्य का पात्र बनता है, अब कहीं जाना तेरे लिए अनुचित है, अतः आत्मस्वरूप में ही आकर तुझे ब्रह्म-पदवी का अनुसरण करना चाहिए ।



३४ मनःशुद्धि के अभाव में

१. वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च, नियमाश्च तपासि च।
न विप्रदुष्टभावस्य, सिद्धि गच्छन्ति कहिचित् ॥

—मनुस्मृति २।९७

जिसका मन अपवित्र है, उस मनुष्य के वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम और तप कभी सिद्धि को प्राप्त नही होते।

२. किं जिनेन्द्रेण रागाद्यै-र्यदि स्व कलुष मन ?

—योगसार

यदि हमारा मन रागादिदोषो से कलुषित है तो जिनेन्द्रभगवान भी क्या कर सकते हैं ?

३. मन मैले सब किछु मैला, तनि धोतै मन हच्छा न होई।

—गुरुग्रन्थसाहिब, महल्ला ३

४. जैसे-चिकनी पट्टी पर लिखा नही जाता, उसी प्रकार मन को शुद्ध बनाए बिना उस पर उपदेश का असर नही होता।

५. अगर मन है मैला न तन को सवार,
पिया है जो अन्धा तो कैसा शृगार ?

६ पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म।

—उत्तराध्ययन ३२।५९

दुष्ट चित्त कर्मों का उपार्जन करता है।



३५ मन की शिक्षा

१. पतितं पशुरपि कूपे, निःसर्तुं चरणचालनं कुरुते।
धिक् त्वां चित्त! भवाब्धेरिच्छामपि नो बिभर्षि निर्गन्तुम्।

कुएं में गिरा हुआ पशु भी उसमें से निकलने के लिए पग-पछाड़ करता है, किंतु रे चित्त! तुझे धिक्कार है कि तू भवसागर से निकलने की इच्छा भी नहीं करता।

२. निद्रासुत पहली चेतता, चित्त! तूं पहली चेत।
उण धन्धा रे कारणे, राखे धूली रेत॥

३. मनः कुतोऽनीशः गमयसि यद मे रम्यपदवीं,
नरे वा नार्यां वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम्।
समन्ते चेतोऽयं सकृदधिगतो ह्यान्तपदवीं,
ततस्तोषे मागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम्॥

अरे मन! तू कहाँ जाने का प्रयत्न कर रहा है? पुरुषों व या स्त्रियों में—दोनों ही जगह जाकर अनुभव होने के कारण तू राग का दास बना है, अब वहाँ जाना तेरे लिए अनुचित है, अतः [illegible] में न जाकर तुझे ब्रह्म भगवान का अनुसरण करना चाहिए।



३६ मनोनिग्रह

१. मनोरोधः परं ध्यानं, तत्कर्मक्षयसाधनम्।

—महाभारत

मन का निरोध करना उत्कृष्ट ध्यान है एवं कर्मक्षय का साधन है।

२. चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दंतं सुखावहं।

—धम्मपद ३५

साधुओ ! चित्त का दमन करो ! दमन किया हुआ चित्त सुख देनेवाला होता है।

३. हस्तं हस्तेन सपीड्य, दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च।
अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य, जयेदादौ स्वकं मनः।

—मुक्तिकोपनिषद् २।५।६

आत्मार्थिपुरुष को चाहिए कि वह हाथ से हाथ को पीडित करके, दांतो से दांतो को पीसते हुए और समस्त शरीर से तत्पर होकर सर्वप्रथम अपने मन को जीत ले।

४. न चञ्चलमनोऽनुभ्रामयेत्।

—चरकसंहिता २८।२७

चंचल मन को स्वच्छन्दरूप से न भटकाओ।

५. हे साधो ! मन का मान तियागउ,
काम-क्रोध-संगति दुर्जन की, ताते अह-निशि भागउ।

—गुरुनानक

६. माथो मूंड्यो मन ने मूंड, नहिं तो पड़सी नरकरो कूंड ।

—राजस्थानी कहावत

७. केसन कहा बिगारिया, जो मूंडै सौ बार ।
मन को काहे न मूंडिया, जामें विषय-विकार ॥

● तन को जोगी सब करे, मन को बिरला कोय ।
सहजे सबविधि पाइए, जो मन जोगी होय ॥

—कबीर

८. अरे सुधारक! जगत की, चिन्ता मत कर यार!
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार ॥

९. मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर ।
मन के मते न चालिए, पलक-पलक मन और ॥

१०. मन के मते न मानिये, मन के मते हजार ।
जो यह गुड़ मांगे कबो, दीजे नमक उधार ॥

—कबीर

११. हियो हुवै जो हाथ, कुसङ्गी केता मिलो ।
चन्दन भुजङ्गां साथ, काळो न लागे 'किसनिया' ।

—सोरठासंग्रह

१२. जो 'रहीम' मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाय ।
जल में ज्यों छाया परी, काया भीजत नांहि ॥

१३ मन अन्तर बोलै सब कोई, मन मारे बिन भगति न होई ।

—कबीर

१४. मन मारे धातु मरि जाई, बिन मूए कैसे हरि पाई ।

—गुरुग्रन्थसाहिब महल्ला ३

१५ मन जाई तो जाण दे, दृढ़ कर राख शरीर ।
ताणे बिना कमान के, किस विध निकले तीर ?



३७ मनोनिग्रह के मार्ग

१. चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥
असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

—गीता अध्याय ६

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! मन चंचल है, हैरान करनेवाला है एवं दृढबली है। उसका निग्रह वायुवत् अत्यन्त दुष्कर है। ३४।
कृष्ण बोले–हे अर्जुन ! निःसन्देह—यह मन चंचल एवं दुर्निग्रह है। इसे अभ्यास तथा वैराग्य से पकडा जा सकता है। ३५।

२. अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

—पातञ्जलयोगदर्शन १।१२

अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन का निरोध होता है।

३. मन की औषधि अभ्यास है, विश्राम नहीं ।

—पोप

४. सेट बौन्ड्स टू यूअर जील बाई डिसक्रीशन ।

—अंग्रेजी कहावत

मन के घोड़े के विवेक की लगाम ।

५. वही शह सवारों में पाता है नाम,
जो काबू में घोडे की रखे लगाम ।

—उर्दू शेर

६ मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं॥

—उत्तराध्ययन २३।५८

मन ही साहसिक एवं भयंकर दुष्ट-घोड़ा है, जो चारों ओर दौड़ता है। मैं उस कंथक-घोड़े को धर्मशिक्षा से काबू में कर रहा हूँ।

७ प्रत्याख्यानावार्य-मदूना नो मनोमयी।
वैराग्यवर्मधारेण, विना स्थातुं न शक्यते॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २८

प्रत्याख्यानावरण [illegible] वैराग्य-[illegible] के बिना नहीं [illegible]।

८. मन [illegible] है।

—गुजराती कहावत

९. मन को वश में करने की चार सीढ़ियाँ—

१ मन की [illegible]।

२ [illegible]।

३. आत्मा की [illegible]।

४ [illegible]।

—[illegible]

१० [illegible]

—[illegible]



मनोनिग्रह से लाभ

१. श्रोत्रं त्वक्-चक्षुषी जिह्वा, नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तपाद वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥
एकादशं मनो ज्ञेय स्वगुणेनोभयात्मकम्।
यस्मिन् जिते जितावेतौ, भवतः पञ्चको गणौ ॥ ९१ ॥

—मनुस्मृति अध्याय २

१. कान, २. चमडी, ३. नेत्र, ४. जिह्वा, ५. नासिका, ६. पायु-गुदा ७ उपस्थ-मूत्रेन्द्रिय, ८ हाथ, ९. पैर, १०. वाणी-ये दश इन्द्रियाँ हैं। पहली पाच बुद्धीन्द्रियाँ एव दूसरी पाँच कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। ग्यारहवाँ मन है-यह अपने स्वभाव से ही उभयात्मक है अर्थात् दोनो ही इन्द्रियगणो का-प्रवर्त्तक है। इस मन को जीत लेने पर दोनो ही प्रकार के इन्द्रियगण जीत लिए जाते हैं।

२. मणगुत्तयाएण जीवे एगग्गं जणइ।
एगग्गचित्तेणं जीवे संजमाराहए भवइ ॥

—उत्तराध्ययन २९।५३

मन का गोपन करने से जीव धर्म मे एकाग्रता प्राप्त करता है। एकाग्रचित्त जीव मनोगुप्त होकर सयम का आराधक होता है।

३. अध्यात्म विद्याधिगमः, साधुसंगम एव च,
वासनासंपरित्यागः, प्राणस्पन्दनिरोधनम्।
एतास्ता युक्तय पुष्टा, प्राणस्पन्दजये किल ॥

—योगवाशिष्ठ ५।१३।८७

अध्यात्मविद्या की ज्ञानप्राप्ति, साधुसंगति, वासनाओं का परित्याग और प्राणस्पन्द-निरोध अर्थात् मन की चञ्चलता का रोकना—ये सभी क्रियाएँ (युक्तियाँ) मन को जीत लेने पर ही निश्चितरूप से आत्मा को पोषण करनेवाली होती है ।

४. दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च, श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः, परो हि योगो मनसः समाधिः ।

—श्रीमद्भागवत ११।२३।४६

दान, अपने धर्म का पालन नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म, एवं ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का अनुशीलन-इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन का निग्रह हो जाय । क्योंकि मन की समाधि ही सर्वोत्कृष्ट योग है ।

५. वश मनो यस्य समाहितं स्यात्, किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ।
हतं मनो यस्य च दुर्विकल्पैः, किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ।

—अध्यात्मकल्पद्रुम

जिसका मन वश में एवं समाधियुक्त है, उसे नियमों एवं यमों से क्या ? तथा जिसका मन बुरे विचारों से ग्रस्त है, उसे भी नियमों और यमों से क्या ?

६. आत्मायत्तं मनः यस्य स एव सुखमश्नुते ।

—रश्मिमाला १३।१३

वही व्यक्ति सुखी होता है, जिसने अपने मन को वश में कर लिया है ।

७. मनोविजेता जगतोविजेता ।

मन का विजेता सारे संसार का विजेता है ।

८. [illegible] मन लालची, [illegible] मन चोर ।
[illegible] मन [illegible] दर्शन होय ॥

९. [illegible]

—वड्‌सवर्थ

मन का तार

१ दादी-पोती जा रही थी। थकावट के कारण पोती दादी को हैरान करने लगी, इतने मे एक ऊँटवाला आगया। बुढिया ने उससे कहा कि इसे थोडी दूर ऊँट पर चढाले। उसने कहा—मैं तो जवान लडकी को नही चढाता। आगे जा कर ऊँटवाले का दिल बिगडा। वह कुछ दूर जाकर रास्ते मे खडा रह गया। इधर बुढिया के मन मे विचार आया कि यदि लडकी को लेकर वह भाग जाता, तो फिर मैं क्या करती ? यो सोचती हुई बुढिया कुछ आगे चली। इतने मे ऊटवाला आ मिला और कहने लगा—बूढी माई ! तेरी पोती को चढा दे ऊँट पर। बुढिया ने कहा—जो तुझे कह गया वह मुझे भी कह गया, चला जा चुपचाप।

२. नेमीचन्दजी मोदी की धर्मपत्नी अपने पीहर किशनगढ मे थी। रात को बारह बजे पुत्र (सज्जनसिंह) का जन्म हुआ। वह बेहोश हो गई। लगभग डेढ घण्टे बाद होश आया, तब उसने अपने पति के कथनानुसार दृढ सकल्प किया कि पुत्रजन्म की खबर पतिदेव को अभी की अभी मिले।

मोदीजी इन्दौर मे थे एवं गहरी नीद मे सो रहे थे। उनकी अचानक आखें खुलीं और आवाज-सी सुनाई दी कि पुत्र का जन्म हो गया। घडी देखी तो पौने दो बज रहे थे। दो दिन बाद किसनगढ से पत्र आया, उसमे पुत्र-जन्म का समय बारह बजे लिखा था। मोदीजी खुश हुए, किन्तु पौने दो घण्टे का फर्क क्यो रहा ? इस सशय मे

निमग्न थे। एक-डेढ़ महीने बाद जब सज्जन की माँ पीहर से इन्दौर आई, तब पता लगा कि पौने दो घंटा तक वह बेहोश थी।

३. रूस के मनोवैज्ञानिक ने १०० किलोमीटर दूर रहकर एक मनुष्य को मन से निर्देश दिया कि सो जाओ! बस, निर्दिष्ट व्यक्ति बैठा बैठा तत्काल लेट गया एवं उसे नींद आ गयी। कुछ समय के बाद निर्देशक ने कहा—उठ जाओ! कहने की ही देरी थी, सोता हुआ व्यक्ति अचानक उठ खड़ा हुआ। निकटवर्ती मनुष्य ने (जो इस प्रयोग की सत्यता को परखने के लिए रखा गया था) पूछा! तुम सोये क्यों और चौंक कर उठे क्यों? उत्तर मिला कि मुझे किसी ने कहा—तुम सो जाओ। फिर मुझे आलस्य आने लगा एवं मैं सो गया। थोड़ी देर में पुनः आवाज आई कि—उठ जाओ जल्दी! बस, मैं उठ गया।

—श्रुति के आधार पर



विलपावर-दृढ़संकल्प

१. वीर नेपोलियन शरीर मे दुर्बल था, लेकिन विलपावर से सारे यूरोप मे तहलका मचा दिया। उसने कहा था—"इम्पोसिबल इज दी वर्ड फाउन्ड ओनली इन दी डिक्सनरी ऑफ फूल्म" (Impossible is the word found only in the dictionary of fools) असम्भव शब्द केवल मूर्खो के शब्दकोप में मिलता है।

२. पैगम्बर मुहम्मद अरव के जाहिल आदमियो मे (जो उन्हे मारने को तैयार थे) "खुदा एक है" यह उपदेश देते थे। स्वामी दयानन्द मस्जिदो मे ठहर कर इस्लामी मत का खण्डन करते थे। भगवान महावीर हिंसात्मक यज्ञ-यागो के खिलाफ निर्भयतापूर्वक अहिंसाधर्म का मडन करते थे। इन सभी का मुख्यसहायक विलपावर ही था। और तो क्या ? महात्मा गाधी ने विलपावर से भारत जैसे महान देश को आजाद बना दिया। एक कवि ने कहा है—व्हेयर देयर इज ए विल, देयर इज ए वे (Where there is a will, there is a way) अर्थात् मनोवल चाहे जहाँ से मार्ग निकाल सकता है।

३. लाहौर के सर गंगाराम भूल मे इजीनियर की कुर्सी पर बैठ गये। इजीनियर अट-शट बकने लगा। उन्होने इजीनियर बनने का दृढ संकल्प कर लिया एव एकनम्बर इजिनियर बने।

—अध्ययन के आधार पर



४१ मन की उपमाएँ

१. इन्सान का मन एक बाग है, आत्मा माली है। चतुर माली को चाहिए कि वह अपने बाग में अच्छे फल-फूल लता-वृक्ष आदि लगाकर उसकी शान बढ़ाये।

२. यह मन एक हलवाई की दुकान है और आत्मा हलवाई है। कुशल-हलवाई को चाहिए कि वह अपनी दुकान में अच्छी घी-चीनी-आटा आदि को व्यवहार में लाए।

३. यह मन एक बच्चा है और आत्मा इसका बाप है। बाप का फर्ज है कि वह अपने बच्चे का पूरा लाड़-प्यार कर एवं उसे खाने-पीने-पहनने के लिए अच्छे से अच्छे पदार्थ दे, किन्तु यदि बच्चा बदमाशी करने लगे, तो उसके थप्पड़ लगाने में भी संकोच न करे।

४. यह मन एक सांप है और शरीर इसकी बांबी है। केवल शरीर पर लाठी मारने से सांप नहीं मरता।

५. यह मन एक [illegible] है। इसको समुद्र-किनारे पर [illegible] आदि का [illegible] दो।

६. यह मन एक [illegible] है [illegible] अच्छा [illegible]। [illegible] (कोई [illegible])।

७. यह मन एक [illegible] की [illegible] है। [illegible] आदि [illegible] जाएँगे।

८. यह मन आत्मा रूपी नाव का लगर है। जब तक यह ससार की मोह-माया मे बधा रहेगा, आत्मा ससारसमुद्र से पार न हो सकेगी।

९. समुद्र मे तूफान आने के समय जलचर-जंतु समुद्र तल मे जा बैठते हैं। यह मन समुद्र है, इसमे तूफान आए, तब ज्ञानियो को चाहिए कि वे आत्मध्यान मे रमण करें।

१०. यह मन एक चलती हुई चक्की है, इसे यदि शुभविचाररूप धान्य न मिला, तो यह विकारी बनकर स्वयं को पीस डालेगी। एक अंग्रेज ने कहा भी है—

Empty mind is the devil's work shop.

एम्पटी माइण्ड इज दी डेविल्ज वर्कशाप।

खाली मस्तिष्क शैतान की कर्मशाला है।

११. यह मन एक दर्पण है इस पर क्रोध की फूंक लगते ही यह धुंधला हो जाएगा।

१२. **जिनदास का घोड़ा**—चम्पानगरी मे जिनदास श्रावक था। राज्य ऋद्धि की वृद्धि करनेवाला राजा का घोडा उसके यहाँ रखा हुआ था। जिनदास उस पर चढकर साधुओ के दर्शन करने जाया करता था। दर्शन करके तालाव तक घूमने जाता, वहाँ से आकर साधुओ के यहाँ सामायिक करता और फिर अपने घर आ जाता। प्रतिदिन इस प्रकार करने से घोडा इतना अभ्यस्त हो गया कि तीनो जगह अपने आप रुक जाता। शत्रु राजा ने उस घोडे को प्राप्त करने के लिए एक धूर्त को भेजा। उसने जैनश्रावक का ढोग करके जिनदास को अत्यन्त प्रभावित कर लिया। एक दिन रात के समय इसे घोडे की रखवाली सौंपकर जिनदास किसी आवश्यक कार्य के लिए वाहर चला गया। पीछे धूर्त के मनचाहे हो गए। वह घोडे पर सवार होकर भागा। घोडा साधुओ के स्थान पर आ ठहरा। फिर दौडाया तो तालाव पर जा पहुचा। फिर चाबुक मारा तो साधुओ के स्थान पर आ गया। फिर एड़ी

लगाई तो घर आ गया। चूहे ने रात भर घोड़े को दौड़ाया, लेकिन वह तीनों स्थानों के ही चक्कर लगाता रहा। आखिर चूहा घोड़े को छोड़कर भाग गया।

मन को जिनदास का घोड़ा बना दो ताकि वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनों से बाहिर न जा पावे।

१३. एक बाबा घोड़े पर सवार कहीं जा रहे थे। उनसे एक पथिक ने घोड़े की कीमत पूछी। बाबा ने कहा—"कोई भी संकल्प-विकल्प किए बिना अगले साल (१२ मास) तक राम-नाम का जाप करेगा, घोड़ा मिल जाएगा। पथिक राम-नाम करता हुआ चलने लगा। थोड़ी दूर बाद घोड़े से सम्बन्धित कई विकल्प उठने लगे और पूछ बैठा—बाबाजी! लगाम साथ देंगे या नहीं? बाबा बोला—अब घोड़ा भी नहीं दूंगा। (कहने का तात्पर्य कि मन को न रोक कर हम अध्यवसाय रूपी घोड़े को खो रहे हैं।)

१४. यह मन बिना नकेल का ऊंट है—इस पर सवार पाना कठिन है—एक बुढ़िया कहीं जा रही थी, बिना नकेल के कई ऊंट बैठे थे। बुढ़िया ने ऊंट की सवारी कभी नहीं की थी अतः उत्सुकतावश वह एक ऊंट पर चढ़ बैठी एवं ऊंट चल पड़ा। बुढ़िया घबराई, किन्तु नकेल न होने से ऊंट पर काबू न पा सकी एवं अंत तक पहुंचना कठिन हो गया।



८. यह मन आत्मा रूपी नाव का लगर है। जब तक यह ससार की मोह-माया मे बधा रहेगा, आत्मा ससारसमुद्र से पार न हो सकेगी।

९. समुद्र मे तूफान आने के समय जलचर-जतु समुद्र तल मे जा बैठते हैं। यह मन समुद्र है, इसमे तूफान आए, तब ज्ञानियो को चाहिए कि वे आत्मध्यान मे रमण करें।

१०. यह मन एक चलती हुई चक्की है, इसे यदि शुभविचाररूप धान्य न मिला, तो यह विकारी बनकर स्वयं को पीस डालेगी। एक अंग्रेज ने कहा भी है—

Empty mind is the devil's work shop.

एम्पटी माइण्ड इज दी डेविल्ज वर्कशाप।

खाली मस्तिष्क शैतान की कर्मशाला है।

११. यह मन एक दर्पण है इस पर क्रोध की फूंक लगते ही यह धुंधला हो जाएगा।

१२. जिनदास का घोडा—चम्पानगरी मे जिनदास श्रावक था। राज्य ऋद्धि की वृद्धि करनेवाला राजा का घोडा उसके यहाँ रखा हुआ था। जिनदास उस पर चढकर साधुओ के दर्शन करने जाया करता था। दर्शन करके तालाब तक घूमने जाता, वहाँ से आकर साधुओ के यहाँ सामायिक करता और फिर अपने घर आ जाता। प्रतिदिन इस प्रकार करने से घोडा इतना अभ्यस्त हो गया कि तीनो जगह अपने आप रुक जाता। शत्रु राजा ने उस घोडे को प्राप्त करने के लिए एक धूर्त को भेजा। उसने जैनश्रावक का ढोग करके जिनदास को अत्यन्त प्रभावित कर लिया। एक दिन रात के समय इसे घोडे की रखवाली सौंपकर जिनदास किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर चला गया। पीछे धूर्त के मनचाहे हो गए। वह घोडे पर सवार होकर भागा। घोडा साधुओ के स्थान पर आ ठहरा। फिर दौडाया तो तालाब पर जा पहुचा। फिर चाबुक मारा तो साधुओ के स्थान पर आ गया। फिर एड़ी

लगाई तो घर आ गया। धूर्त ने लात मार घोड़े को दौड़ाया, लेकिन वह तीनों स्थानों के ही चक्कर लगाता रहा। आखिर धूर्त घोड़े को छोड़कर भाग गया।

मन को जिनदास का घोड़ा बना लो ताकि वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनों से बाहिर न जा पावे।

१३. एक बाबा घोड़े पर सवार कहीं जा रहे थे। उनमें एक पथिक ने घोड़े की कीमत पूछी। बाबा ने कहा—"घोड़ा भी स्वच्छन्द-विचरण किए बिना अगले गाम (२।। कोस) तक राम-राम का जाप करो, घोड़ा मिल जाएगा। पथिक राम-राम करता हुआ चलने लगा। थोड़ी देर बाद घोड़े से सम्बन्धित कई विकल्प उत्पन्न हुए और पूछ बैठा—बाबाजी! लगाम साथ देंगे या नहीं? बाबा बोला—अब घोड़ा भी नहीं दूंगा। (तदर्थ यह है कि मन को न रोका जाए तो उच्छृङ्खल घोड़े जैसा रहेगा।)

१४. यह मन बिना नकेल का ऊँट है—इस पर काबू पाना कठिन है—एक बुढ़िया मन्दिर जा रही थी, बिना नकेल के कई ऊँट बैठे थे। बुढ़िया ने ऊँट की सवारी करनी चाही तो भी क्या उत्सुकतावश वह एक ऊँट पर चढ़ बैठी तब वह चल पड़ा। बुढ़िया घबराई, किन्तु नकेल न होने से ऊँट पर काबू न पा सकी। फलतः मन्दिर पहुँचना कठिन हो गया।



ग्रन्थ-सूची :

१. अगुत्तरनिकाय
२. अत्रिसहिता
३. अथर्ववेद
४. अध्यात्मकल्पद्र म
५. अन्ययोगव्यवच्छेद—द्वात्रिंशिका
६ अपरोक्षानुभूति
७. अभिज्ञानशाकुन्तल (शाकुन्तल)
८. अभिधानचिन्तामणि (हेमकोष)
९. अभिधानराजेन्द्रकोष
१०. अमितगति-श्रावकाचार
११. अमूल्यशिक्षा
१२. अष्टकप्रकरण-(वादाष्टक)
१३. अष्टाङ्गहृदय
१४. आइने-अकबरी
१५. आकर्षणशक्ति
१६. आचारांग-चूर्णि
१७. आचारांगसूत्र
१८. आचार्यशिवनारायण की रिपोर्ट
१९. आत्मविकास
२०. आत्मानुशासन
२१. आपस्तम्बस्मृति
२२. आवश्यकनिर्युक्ति
२३. आवश्यकसूत्र
२४. इतिहासतिमिरनाशक
२५. इष्टोपदेश
२६ इस्लामधर्म क्या कहता है?
२७. उज्ज्वलवाणी
२८. उत्तररामचरित
२९. उत्तराध्ययनसूत्र
३०. उद्भटसागर
३१. उर्दू शेर
३२. उपदेशतरंगिणी
३३. उपदेशप्रासाद
३४. उपदेशसुमनमाला
३५. ऋग्वेद
३६. ऋषिभाषित
३७ ऐतरेयब्राह्मण
३८. ओघनिर्युक्ति
३९. औपपातिकसूत्र
४०. कठोपनिषद्

४१. कथासरित्सागर
४२. कल्पतरु
४३. कल्याण—संत अंक
४४. कल्याण—बालकअंक
४५. कहावतें—
(क) अंग्रेजी कहावतें
(ख) इटालियन ,,
(ग) ईरानी ,,
(घ) उर्दू ,,
(ङ) गुजराती ,,
(च) चीनी ,,
(छ) जापानी ,,
(ज) पंजाबी ,,
(झ) फारसी ,,
(ञ) बंगला ,,
(ट) मराठी ,,
(ठ) राजस्थानी ,,
(ड) संस्कृत ,,
(ढ) सिन्धी ,,
४६. कात्यायनस्मृति
४७. किरातार्जुनीय
४८. [illegible]
४९. कुमारसम्भव
५०. [illegible]
५१. केनोपनिषद्
५२. कौटिलीय अर्थशास्त्र
५३. [illegible]
५४. गणधरवाद
५५. गरुडपुराण
५६. गीता (श्रीमद्भगवद्गीता)
५७. गुरुग्रन्थसाहिब
५८. घटकर्पर का नीतिसार
५९. चन्द्रचरित (संस्कृत)
६०. चरकसंहिता
६१. चरकसूत्र
६२. चाणक्यनीति
६३. चाणक्यसूत्र
६४. छान्दोग्य-उपनिषद्
६५. [illegible]
६६. जीवनसत्य
६७. जैन पाण्डव चरित्र
६८. जैन-भारती
६९. जैनसिद्धान्त-दीपिका
७०. ज्ञानप्रकाश
७१. ज्ञानार्णव
७२. तत्त्वामृत
७३. [illegible]
७४. तन्दुलवैचारिक प्रकीर्णक
७५. [illegible]-उपनिषद्
([illegible])
७६. [illegible]
७७. [illegible]
७८. तैत्तिरीय-उपनिषद्
७९. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र

८०. थेरगाथा
८१. दक्षस्मृति
८२. दशकुमारचरित्र
८३. दशवैकालिकचूलिका
८४. दशवैकालिक-नियुक्ति
८५. दशवैकालिकसूत्र
८६. दशाश्रुतस्कन्ध
८७. दीघनिकाय
८८. दृष्टान्तशतक
८९. देवीभागवत
९०. देश-विदेश की अनोखी प्रथाएं
९१. दोहा-द्विशती
९२. दोहा-संदोह
९३. धम्मपद
९४ धर्मकल्पद्रुम
९५. धर्म के नाम पर
९६. धर्मयुग (साप्ताहिक)
९७. नन्दीटीका
९८. नलविलास
९९. नवभारत टाइम्स (दैनिक)
१००. नालन्दा-विशालशब्दसागर
१०१. नियमसार
१०२. निशीथ-भाष्य
१०३. निश्चयपञ्चाशत्
१०४ नीतिवाक्यामृत
१०५. नीतिसार
१०६. नैषधीयचरित्र (नैषध)
१०७. न्युयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड
१०८. पंचतत्र
१०९. परमात्म-द्वात्रिंशिका
११०. पराशरस्मृति
१११. पहेलवी टैक्स्ट्स
११२. पातजलयोगदर्शन
११३. प्रकरणरत्नाकर
११४. प्रज्ञापना
११५. प्रशमरति
११६. प्रसंगरत्नावली
११७ प्रास्ताविकश्लोकशतक
११८. वृहत्कल्पभाष्य
११९. वृहत्कल्प-सूत्र
१२० वृहदारण्यकोपनिषद्
१२१. वृहन्नारदीय-पुराण
१२२. वृहस्पतिस्मृति
१२३. बाइबिल
१२४. ब्रह्मवैवर्त पुराण
१२५ ब्रह्मानन्दगीता
१२६. भक्तिसूत्र
१२७. भक्तामर-विवृति
१२८. भगवतीसूत्र
१२९ भर्तृहरि-नीतिशतक
१३०. भर्तृहरि-वैराग्यशतक
१३१. [illegible] गारशतक
१३२. [illegible] रत्न

१३३. भारतज्ञान-कोष
१३४ भारतीय अर्थशास्त्र
१३५. भाषाश्लोकसागर
१३६. भोज प्रबन्ध
१३७ मज्झिमनिकाय
१३८. मनुस्मृति
१३९ मनोनुशासन
१४० मरुभारती
१४१ महाभारत
१४२. मारवाड़ी-भजनमाला
१४३ [illegible] निर्मल [illegible]
(मराठी धर्मग्रन्थ)
१४४ मुक्तिकोपनिषद्
१४५ मुण्डकोपनिषद्
१४६. [illegible]
१४७ मुनिश्री हजारीमलजी का [illegible]
१४८ मृच्छकटिक
१४९. मेघदूत
१५०. मोक्षपाहुड
१५१ यजुर्वेद
१५२ याज्ञवल्क्यस्मृति
१५३. [illegible] P R O
(अंग्रेजी पत्रिका)
१५४ यू. एन. [illegible]
[illegible] १९४८ ई.
१५५. [illegible]
१५६. योगदर्शनभाष्य
१५७ योगवासिष्ठ
१५८. योगशास्त्र
१५९. योगशिखोपनिषद्
१६० योगसार
१६१. रघुवंश
१६२ रश्मिमाला
१६३. राजप्रश्नीयसूत्र
१६४. रामचरितमानस
१६५. लघुयोगवासिष्ठसार
१६६ लघुसारवृत्ति
१६७ लूका (बाइबिल)
१६८ लोकप्रकाश
१६९. लोकोक्तियां—
(क) अंग्रेजी लोकोक्ति
(ख) जैन ,,
(ग) वैदिक ,,
(घ) लौकिक ,,
१७० वायु पुराण
१७१ वाल्मीकिरामायण
१७२. विक्रमोर्वशीयनाटिका
१७३ विज्ञान (वैज्ञानिक)
१७४. विज्ञान के नये आविष्कार
१७५ विदुरनीति
१७६. विवेकचूडामणि
१७७. विवेकविलास
१७८ विशेषावश्यक
१७९ [illegible]

८०. थेरगाथा
८१. दक्षस्मृति
८२ दशकुमारचरित्र
८३ दशवैकालिकचूलिका
८४. दशवैकालिक-निर्युक्ति
८५. दशवैकालिकसूत्र
८६. दशाश्रुतस्कन्ध
८७. दीघनिकाय
८८. दृष्टान्तशतक
८९. देवीभागवत
९०. देश-विदेश की अनोखी प्रथाएं
९१. दोहा-द्विशती
९२. दोहा-संदोह
९३. धम्मपद
९४. धर्मकल्पद्रुम
९५. धर्म के नाम पर
९६. धर्मयुग (साप्ताहिक)
९७. नन्दीटीका
९८. नलविलास
९९. नवभारत टाइम्स (दैनिक)
१००. नालन्दा-विशालशब्दसागर
१०१. नियमसार
१०२. निशीथ-भाष्य
१०३. निश्चयपञ्चाशत्
१०४. नीतिवाक्यामृत
१०५ नीतिसार
१०६. नैषधीयचरित्र (नैषध)
१०७ न्युयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड
१०८. पंचतंत्र
१०९. परमात्म-द्वात्रिंशिका
११०. पराशरस्मृति
१११. पहेलवी टैक्स्ट्स
११२. पातंजलयोगदर्शन
११३. प्रकरणरत्नाकर
११४. प्रज्ञापना
११५. प्रशमरति
११६ प्रसंगरत्नावली
११७. प्रास्ताविकश्लोकशतक
११८. बृहत्कल्पभाष्य
११९. बृहत्कल्प-सूत्र
१२० बृहदारण्यकोपनिषद्
१२१. बृहन्नारदीय-पुराण
१२२. बृहस्पतिस्मृति
१२३. बाइबिल
१२४ ब्रह्मवैवर्त पुराण
१२५. ब्रह्मानन्दगीता
१२६. भक्तिसूत्र
१२७. भक्तामर-विवृति
१२८. भगवतीसूत्र
१२९. भर्तृहरि-नीतिशतक
१३०. भर्तृहरि-वैराग्यशतक
१३१. भर्तृहरि-शृंगारशतक
१३२. भवभूति के गुणरत्न

१३३ भारतज्ञान कोश
१३४ भारतीय अर्थशास्त्र
१३५. भारतीयकलागम
१३६ मौन प्रवचन
१३७ मज्झिमनिकाय
१३८ मनुस्मृति
१३९ मनोनुशासन
१४० मनस्विनी
१४१ महाभारत
१४२. महावीर-भजनमाला
१४३. [illegible] (पारसी धर्मग्रन्थ)
१४४ माण्डूक्योपनिषद्
१४५ मुण्डकोपनिषद्
१४६. मुद्राराक्षसनाटक
१४७ मुनिश्री नगराजजी का मत
१४८ मृच्छकटिक
१४९ मेघदूत
१५०. [illegible]
१५१. यजुर्वेद
१५२. याज्ञवल्क्यस्मृति
१५३. [illegible] P R O (पारसी धर्मग्रन्थ)
१५४ यू. एन. [illegible] [illegible] १९६० ई.
१५५. [illegible]
१५६. योगदर्शनभाष्य
१५७. योगवासिष्ठ
१५८. योगशास्त्र
१५९. योगशिखोपनिषद्
१६० योगसार
१६१. रघुवंश
१६२. रश्मिमाला
१६३. राजप्रश्नीयसूत्र
१६४ रामचरितमानस
१६५ लघुयोगवासिष्ठसार
१६६ लघुशब्दवृत्ति
१६७ लूका (बाइबिल)
१६८ लोकप्रकाश
१६९. लोकोक्तियाँ—
(क) अरबी लोकोक्ति
(ख) चीनी ,,
(ग) वैदिक ,,
(घ) स्पेनिश ,,
१७० वायु पुराण
१७१ वाल्मीकिरामायण
१७२ विक्रमोर्वशीयनाटिका
१७३ विनयपिटक (बौद्धनिकाय)
१७४. विज्ञान के नये आविष्कार
१७५ विदुरनीति
१७६. विवेकचूडामणि
१७७. विशुद्धिमार्ग
१७८ विश्वप्रकाश
१७९. विश्वकोश

१८०. विश्वदर्पण
१८१. वीरअर्जुन
१८२. वेद
१८३ वेदान्तदर्शन
१८४. व्यवहारभाष्य
१८५. व्याख्यान का मसाला
१८६. व्यासस्मृति
१८७. व्रताव्रत की चौपाई
१८८. शंकरप्रश्नोत्तरी
१८९. शतपथ ब्राह्मण
१९०. शान्तसुधारस
१९१. शार्ङ्गधर
१९२. शिशुपालवध
१९३. शुक्रनीति
१९४. सुश्रुत
१९५. श्राद्धविधि
१९६. श्रीमद्भागवत (भागवत)
१९७. श्री विलक्षणअवधूत–स्वरोदयअग
१९८. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१९९. संयुक्तनिकाय
२००. सवेगद्रुमकन्दली
२०१. सभातरंग
२०२. समयसार
२०३. समवायागसूत्र
२०४. समाधिशतक
२०५. सरलमनोविज्ञान
२०६. सरिता
२०७. सवैयाशतक
२०८. सहलतस्तरी
२०९. सांख्यकारिका
२१०. सामायिकसूत्र
२११. सिन्दूर प्रकरण
२१२. सुभाषितरत्नखण्ड-मंजूषा
२१३. सुभाषितरत्न-भाण्डागार
२१४. सुभाषित सचय
२१५. सूक्तरत्नावलि
२१६. सूत्रकृतांगसूत्र
२१७. सोरठा-संग्रह
२१८. सोवियत भूमि
२१९. स्कन्धपुराण
२१०. स्थानागसूत्र
२२१. स्याद्वादमंजरी
२२२. स्वरशास्त्र
२२३. हजरत बुखारी और मुस्लि
२२४. हठयोगप्रदीपिका
२२५. हरितस्मृति
२२६. हर्षचरित
२२७. हितोपदेश
२२८. हिन्दी मिलाप (दैनिक)
२२९. हिन्दुस्तान (दैनिक)
२३० हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)